

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180559

UNIVERSAL
LIBRARY

बात-बात में बात

कथात्मक बातों में महत्वपूर्ण समस्याओं का विवेचन

प्रशापाल

(परिमार्जित और अशत. परिवर्तित तीसरा संस्करण)

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

प्रकाशक—

विप्लव कार्यालय

लखनऊ

अनुवाद सहित सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित

मुद्रक—

साथी प्रेस

लखनऊ

समर्पण

ज्यों केले के पात-पात में पात,
त्यों सज्जन की बात-बात में बात ।

यशपाल

प्रसंग

१—साहित्य का प्रयोजन और रूप:

साहित्य के दो रूप—शुद्धसाहित्य और जनसाहित्य । साहित्य और प्रचार । विचार-शून्य साहित्य और प्रचार-पूर्ण साहित्य, जहाँ विचार वहाँ प्रचार । विचार-शून्य साहित्य ही कला नहीं हो सकता है । कला के लिये कला । सौन्दर्य पदार्थ का गुण है या स्वयं लक्ष ? हमारे प्राचीन साहित्य में शामक श्रेणी के अधिकारों का समर्थन, स्त्री पर पुरुष की सत्ता का समर्थन, स्वामी-भक्ति का समर्थन और प्रचार । परिवर्तनशील समाज और शाश्वत सौन्दर्य । प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रेणी आधार और भावना । सौन्दर्य की कल्पना के भिन्न आदर्श—शासकवर्ग की निरंकुश भोग की कल्पना, शोषितवर्ग की मुक्ति कामना, मध्यम श्रेणी का पलायनवाद, व्यक्तिगत आत्म-लिप्ति और अभाव में सुख की कल्पना । प्रगतिशील साहित्य का ध्येय । पृष्ठ—९—२७

२—पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता :

समाज में सम्मान और शक्ति का आधार—शारीरिक बल और सम्पत्ति का बल, श्रम-शक्ति का अपमान और सम्पत्ति की प्रतिष्ठा । सम्पत्ति के लिये नष्टर्ष और उसकी दासता । उत्पादन का साधन सम्पत्ति है या श्रम ? मुनाफा । श्रम की चोरी और धन की चोरी । मुनाफे के अधिकार की स्वतंत्रता समाज विरोधी, सामाजिक विषमता और बेईमानी का कारण है । हिंसा ? सामूहिक-शक्ति द्वारा न्याय की स्थापना ही क्रान्ति है । पृष्ठ—२८—४३

३—पूँजीवाद की भोग्य-महिला और समाजवाद की आत्म-निर्भर नारी :

समाज में स्त्री और पुरुष की तुलनात्मक स्थिति । स्त्री की आर्थिक पराधीनता, स्त्री की सामाजिक दासता का कारण । प्राचीन संस्कृति में स्त्री का स्थान ? मातृत्व के सम्मान का प्रपंच । स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता और परिवार । स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता से समाज में आर्थिक विषमता की आशंका ? स्त्री के सौन्दर्य की पूँजीवादी धारणा । नारी व्यक्तिगत या सामा

जिक सम्पत्ति ? समाजवाद में नारी की स्थिति ? स्त्री की आत्म-निर्भरता के प्रति पूंजीवादी संस्कृति का विरोध । समाजवादी व्यवस्था और स्त्री की आर्थिक आत्म-निर्भरता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध । पृष्ठ--४४—५९

४--राम-राज और मजदूर-राज की नैतिकता :

समाज के जीवन का आधार उत्पादन, मनुष्य के श्रम और यंत्रों द्वारा उत्पादन । यंत्रों द्वारा उत्पादन से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन । नैतिकता का आधार समाज के आर्थिक सम्बन्ध हैं । नैतिकता का व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण । नैतिकता का आध्यात्मिक और भौतिक आधार । नैतिकता के शाश्वत और परिवर्तनशील रूप । द्वन्द्व द्वारा नैतिकता का विकास । समाज का नैतिक विकास या पतन ? पूंजीवादी प्रजातंत्र की असलियत ? नैतिकता के गांधीवादी और मार्क्सवादी रूप ? राजनीति का साम्प्रदायिक और आर्थिक आधार ! नैतिकता और संस्कृति का देशी-विदेशी दृष्टिकोण । पृष्ठ-६०-९१

५--राम-राजी प्रजातंत्र और मजदूर तानाशाही :

आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण । सामाजिक समस्याओं का पूंजीवादी और समाजवादी दृष्टिकोण । जनता की सरकार या सरकार की जनता ? भौतिक संतोष और आत्मिक शान्ति ? पूंजी के अधिकार का न्याय । क्रान्ति के विरोध में गांधी जी की ब्रिटिश शासन को सहायता । गांधीवाद पर समाजवादी क्रान्ति का आतंक । स्वाराज्य या देशी-विदेशी पूंजीपतियों में हिस्सा बांट का समझौता । देश का औद्योगीकरण ? रामराज और मजदूर तानाशाही । तानाशाही और नृत्य-अहिंसा ? मुनाफा या समाज की हत्या का अधिकार ? मध्यम-श्रेणी का स्थान और भविष्य ? क्रान्ति का स्वाभाविक मार्ग । हड़ताल की नैतिकता और अनैतिकता ? मजदूर-श्रेणी की चेतना और कर्तव्य बुद्धि ।

पृष्ठ-९२--१२९.



परिचय

बात-बात में जब बात पक्की हो जाती है तो पण्डितों की भाषा में उसे 'वाद' कहते हैं। बात के दो छोर होते हैं, एक आरम्भ का दूसरा अंत का। जब बात फैल जाती है तो उसके आदि-अंत में द्वन्द्व होने लगता है। उसमें नयी बात या नया ज्ञान पैदा होता है। ज्ञानी लोग बात से घबराने नहीं, उस से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

बात का मूल्य और अर्थ कहने वाले पर भी निर्भर करता है इसलिये चक्कर क्लब में बात करने वालों का संक्षिप्त परिचय श्रोताओं या पाठकों को दे देना उपयोगी है:—

जिज्ञासु—पढ़े-लिखे बहुत काफी हैं। तरह-तरह की परस्पर मत-विरोधी पुस्तकें और विचार पढ़ते रहने के कारण अपना मत स्थिर नहीं है। जानने की इच्छा उन का स्वभाव या चम्का बन गया है।

राष्ट्रीयजी—भारत को संसार का गुरु विख्यात करते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनन्य समर्थक हैं। उमी के पुनरुत्थान में देश का कल्याण समझते हैं। समाजवाद और कम्युनिज्म को भारतीय भावना और संस्कृति का शत्रु और नाशक समझते हैं। हिन्दूराष्ट्र के समर्थक हैं।

वैज्ञानिक—परम्परागत नैतिक सिद्धान्तों अथवा विश्वासों को सत्य की कसौटी नहीं मानते। भौतिक-विज्ञान और समाज के अनुभवों के अनुसार ही नैतिकता का भी विश्लेषण और निश्चय करने के समर्थक हैं।

श्रद्धासाहित्यिक—जीवन में साहित्यिक आनन्द से ऊंची कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते। साहित्य का उद्देश्य स्वतः साहित्य को और उससे चरम मानसिक आनन्द की प्राप्ति ही मानते हैं।

प्रगतिशील—साहित्य को जीवन की भौतिक तथा मानसिक पूर्णता का और सामाजिक तथा राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन मानते हैं।

सर्वोदयी—भारतीय और आध्यात्मिक संस्कृति की गांधीवादी व्याख्या के समर्थक हैं। देश और संसार का कल्याण सत्य-अहिंसा के गांधी-वादी दृष्टिकोण द्वारा ही सम्भव समझते हैं।

इतिहासज्ञ—प्रत्येक प्रसंग की विवेचना इतिहास के आधार पर करते हैं ।

मार्क्सवादी—तर्क में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी मार्ग को मानते हैं । सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को आर्थिक आधार और श्रेणी संघर्ष की कसौटी पर जांचते हैं ।

कामरेड—विचारधारा मार्क्सवादी है परन्तु बातचीत में दांव-पेच से नहीं, अपना मत ही सत्य और निर्णयात्मक समझते हैं ।

श्रीमती जी—एम० ए० तक पढ़-लिख कर गृहस्थी चलाती हैं । कलात्मक रुचि है, पढ़ने लिखने का शौक है, तर्क का चस्का है । विश्वास और तर्क के मिले-जुले मार्ग पर चलती हैं ।

महिला—प्राचीन भारतीय नारी के आदर्श की समर्थक हैं परन्तु स्त्रियों के लिये पुरुषों के समान अधिकार की पक्षपाती भी हैं ।

भद्रपुरुष—बहस में झगड़े से बहुत घबराते हैं परन्तु बहस के बिना रह भी नहीं सकते । नित्य दो समाचार पत्रों को आद्योपांत पढ़ते हैं ।

कांग्रेसी—कांग्रेसी-सरकार के समर्थक, धनी और कारोबारी सज्जन हैं । समाजवाद और क्रान्ति से घबराते हैं ।

मौजी—नौकरी पेशा आदमी है । दुतरफा बात करते हैं । गाने का शौक है । फिल्मी तरजों की नकल हू-बहू कर लेते हैं । भज्राक गहरा और अर्थ पूर्ण करते हैं ।

प्रथम संस्करण अगस्त १९५०



साहित्य का प्रयोजन और रूप

समाजवादी, राष्ट्रीय, प्रगतिवादी, शुद्धसाहित्यिक, सर्वोदयी और कामरेड तथा जिज्ञासु जैसे भिन्न मत और विश्वास के लोग जहाँ जुट जायें, वहाँ बहस और विवाद के सिवा और क्या होगा ? अनेक बातों में घोर मतभेद होने पर भी 'चक्कर क्लब' में इस बात पर मतैक्य या सर्वसम्मति है कि 'वादे वादे जायते तत्त्व बोधः।' अर्थात् बात-बात में 'बात' निकल आती है। इसलिये अनेक अवसरों पर तुमूल संघर्ष हो जाने पर भी 'चक्कर क्लब' में बाद-विवाद का क्रम बना ही रहता है।

जब कभी कोई गम्भीर विषय विवाद के लिये चालू नहीं रहता तो चलती फिल्मों की ही चर्चा होने लगती है। आजकल के नागरिक जीवन में बात-चीत का इससे सुलभ प्रसंग और हो ही क्या सकता है ?

मौजी किसी फिल्म की चर्चा करने के बाद गुनगुना रहे थे—

“मैं भौंरा तू फूल, यह मत भूल
जवानी लौट के आये ना।
यह जीवन तुझको प्यारा.....”

जिज्ञासु ताल पर चूटकी बजाते हुये झूमने लगे और सहसा बोल उठे—
“भई खूब, कितनी सच्ची कितनी सीधी और जोरदार बात कह दी है ?”

प्रगतिवादी ने समर्थन किया—“जी, इसका पूरा असर इसके सीधेपन में है। यही बात क्लिष्ट शब्दों में कहिये, वह बात नहीं आयेगी।”

मौजी अपने गाये गीत की प्रशंसा से उत्साहित हुये और जरा ऊंचे स्वर में दूसरी गज़ल गाने लगे :—

“तकदीर बनी बन कर बिगड़ी
दुनिया ने हमें बरबाद किया.....”

“गौरव तो हमें अपने प्राचीन साहित्य का बहुत है” वैज्ञानिक बोले, “परन्तु रस सभी को आता है आजकल की ही चीजों में। जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले ! आपके कालिदास, सूर, तुलसी, गालिब, इकबाल, पंत, बच्चन, निराला की चीजें तो कोई सड़कों पर गाता नहीं फिरता। सिनेमा की इन चीजों में कुछ शक्ति है जो लोग-बाग का दिल पकड़ लेती हैं। हमारा साहित्यिक उस बात को क्यों नहीं पकड़ता ?”

वैज्ञानिक की बात के उत्तर में शुद्धसाहित्यिक मुस्करा दिये।

जिज्ञासु उन्हें सम्बोधन कर बोले—“कहिये, कहिये, आप कहिये ?”

शुद्धसाहित्यिक मुस्कराते हुये होठों से बोले—“मेघ से जल बरसता है। वह जल हिमाच्छादित पर्वत शृंगों पर सूर्य की रश्मियों में हीरे के समान ज्योतिर्मय होता है। उसी मेघ से जल बरसता है साधारण ग्राम की भूमि पर भी, और गदला होकर नालियों में बह जाता है। इसी प्रकार साहित्य और कविता के दो रूप हैं।”

उपमा, कविता और साहित्य के विश्लेषण से श्रीमती जी का चेहरा प्रशंसा से खिल उठा परन्तु उसी बात से कामरेड उत्तेजित होकर बोले—“यानि आप जनता द्वारा समझे जा सकने वाले साहित्य को गदला जल कहते हैं ?”

वैज्ञानिक बीच में बोल उठे। शुद्धसाहित्यिक को उन्होंने सम्बोधन किया—“आपकी उपमा बहुत ऊंची है परन्तु श्रीमान् गांव की भूमि पर बरसने वाले मेघ का जल गदला होकर खेतों में समा जाता है और अन्न पैदा करता है। हिमाच्छादित पर्वत शृंग पर बरस कर बह जाने वाला जल केवल चमका ही करता है। जब पर्वतशृंग उसका बोझ सम्भाल नहीं पाता तो वह ग्लेशियर (हिमशिला) के रूप में गिर पड़ता है और नदियों में संहारकारी बाढ़ आ जाती है। हमें गाँव की भूमि पर बरसने वाले जल से ही अधिक प्रयोजन है ?”

धूप में चमकते हिमशृंगों पर गदला जल छींट दिया जाने से श्रीमती जी के चेहरे पर आ गयी प्रसन्नता की चमक की जगह गम्भीरता का बादल छा गया।

कामरेड ने गर्दन ऊंची कर समर्थन किया—“ठीक तो है, हमें जनता के लिये साहित्य चाहिये, साहित्य केवल महलों की ही चीज नहीं है ?”

“नहीं केवल इतना ही नहीं” प्रगतिवादी ने संशोधन किया, “गांवों की भूमि पर बरसने वाला जल बेढंगे तौर पर बह कर गांव के मकानों की नींवों में मार कर सकता है, बहुत से खेतों की फसल बहा ले जा सकता है और गड़ों

में बेमौका ठहरा रहकर बाद में मलेरिया पैदा कर सकता है। वर्षा के जल को हानिकारक न होने देकर लाभदायक बनाने के लिये सचेत रहना पड़ता है, बांध भी लगाने पड़ते हैं और नालियां भी खोदनी पड़ती हैं। वर्षा प्रकृति की देन है, साहित्य मनुष्य की अपनी रचना है। साहित्य के लिये तो और भी सचेत व्यवहार की आवश्यकता है।”

“यानि, उसे प्रचार और प्रोपेगैंडा बना देने की आवश्यकता है !” शुद्ध साहित्यिक हाथ फैलाकर बोले और जोर से विद्रूप का कहकहा लगा दिया।

उनके अट्टाहास से प्रगतिवादी को झेंपते देख कर मार्क्सवादी ने अपने नये जलाये सिगरेट से एक कश खींच कर पूछा—“अच्छा आप ही बताइये, साहित्य प्रचार नहीं तो क्या है ?”

“साहित्य है सौन्दर्य की अनुभूति” अपनी रीढ़ पर तन कर शुद्धसाहित्यिक ने अपने उत्तर की व्यापकता प्रकट करने के लिये दोनों बांहें दूर तक फैला दीं।

मर्म की इस बात को सभी लोग गम्भीरता से सुन रहे थे। मार्क्सवादी ने उस गम्भीरता की उपेक्षा कर मुस्कराते हुये पूछा—“सौन्दर्य की अनुभूति या सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ?”

“एक ही बात है; अनुभूति या अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति या अनुभूति” शुद्ध साहित्यिक ने सिर हिलाकर अपने फैले हुये हाथ ऊपर उठा दिये।

सर्वोदयी ने भी सिर हिलाकर उनका समर्थन किया—“हां, एक ही बात है, मर्म की बात है न ! हां एक ही तो बात है।”

वैज्ञानिक ने ऊंचे स्वर में विरोध किया—“एक बात आप कैसे कह सकते हैं ? एक समय आप कुछ अनुभव करते हैं और उसे अभिव्यक्त या जाहिर नहीं करते। दूसरे समय दूसरे की अभिव्यक्ति सुनकर अनुभव करने लगते हैं। अनुभूति आपके मन की वस्तु है परन्तु अभिव्यक्ति एक सामाजिक वस्तु है। साहित्य को अभिव्यक्ति कहेंगे। उसका प्रयोजन है, अपनी अनुभूति को प्रकट करना, अपनी अनुभूति का भाग दूसरों को देना; अनुभूति को सामाजिक रूप देना।”

“हां, हां; ठीक है” शुद्धसाहित्यिक ने उदारता से स्वीकार किया, “पर बात दो नहीं; बात एक ही है। वही बात न; सौन्दर्य और आनन्द की सृष्टि करना और उसका विस्तार करना।”

“परमात्मा के सत्य सौन्दर्य का और अहिंसा तथा प्रेम का विस्तार” सर्वोदयी ने अपनी बात जोड़ दी।

“किसी भी विचार का विस्तार प्रचार है।” वैज्ञानिक ने तर्क किया। मार्क्सवादी उन दोनों की उपेक्षा कर बोल उठे—“परन्तु उस सौन्दर्य और आनन्द का एक दृष्टिकोण या प्रयोजन तो होना चाहिये।”

“वाह” सर्वोदयी जी ने उत्तर दिया, “सौन्दर्य और आनन्द का, प्रेम और अहिंसा का प्रयोजन क्या और दृष्टिकोण क्या ? वह तो स्वतः चरम लक्ष्य है। वह कोई सांसारिक संघर्ष की वस्तु तो है नहीं।”

“ठीक, ठीक श्रद्धासाहित्यिक ने जोर से समर्थन किया—“सौन्दर्य और आनन्द का क्या लक्ष्य ? वही तो परम लक्ष्य है, परम सुख है। सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य की उपासना, निष्काम उपासना; इसी को कला के लिये कला या ‘आर्ट फार आर्ट मेक’ कहते हैं। यही है साहित्य का लक्ष्य ‘सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् !’ उन्होंने विजय के संतोष से सब ओर देखा और उन्हें श्रीमती जी और महिला के चेहरों पर अपनी बात का प्रभाव दिखाई दिया।

मार्क्सवादी इस बात में संतुष्ट नहीं हुए और मिर हिलाकर बोले—“सौन्दर्य ? सौन्दर्य तो पदार्थों और भावों का गुण है। सौन्दर्य को आप पदार्थ और भाव में अलग नहीं कर सकते। कोई पदार्थ या भाव ही सुन्दर हो सकता है। जैसे पदार्थ के बिना सौन्दर्यबोध नहीं हो सकता वैसे ही उद्देश्य या भाव को प्रस्तुत किये बिना कला की अनुभूति और अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। कला के लिये कला या आर्ट फार आर्टमेक एक निस्सार बात है, जैसे सौन्दर्य केवल पदार्थों का गुण है, स्वयं कोई वस्तु नहीं है वैसे ही साहित्य की कला विचारों की सुगढ़ अभिव्यक्ति-मात्र ही है, स्वयं कोई वस्तु नहीं है। कलाकार कला के लिये कला की बात उस समय कहता है जब वह अपनी कृति में विफलता अनुभव करता है, उसे निष्प्रयोजन होता देखता है और अपने निष्फल प्रयत्न को ही लक्ष्य बता कर संतोष पाना चाहता है। स्टैलिन के शब्दों में—कलाकार मानव आत्मा का इंजीनियर है। उसकी कला का उद्देश्य ‘कला’ या मन बहलाव ही नहीं परन्तु समाज का भौतिक और सांस्कृतिक कल्याण होना चाहिये ?”

जिज्ञासु ने शान्त स्वर में प्रश्न किया—“यदि कला का उद्देश्य समाज का निर्माण, विकास, और कल्याण ही हो तो फिर विधि-निषेध की पुस्तकों, नीति-ग्रन्थों और साहित्य में क्या अन्तर रह जायगा ?”

“हाँ हाँ” श्रद्धासाहित्यिक उनकी बात लेकर बोले, “फिर तो साहित्य ‘नुस्खा’ और ‘स्लोगन’ ही हो जायेगा जैसा कि कम्युनिस्ट साहित्य होता है। साहित्य का वास्तविक गुण और प्रयोजन तो सौन्दर्य की रचना और अभिव्यक्ति ही

है। उसे प्रचारात्मक बना देने से ऐसा गुण उसमें कहां रहेगा? आप अपना प्रचार करते रहिये, राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष भी चलाइये परन्तु साहित्य के सौन्दर्य को प्रचार से कलुषित न कीजिये।”

“कोई साहित्य प्रचार रहित नहीं हो सकता” मार्क्सवादी गम्भीरता से बोले, “उद्देश्यों, आदर्शों और विचारों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति या विचारार्थ समस्याओं की ओर कलापूर्ण ढंग से ध्यान दिलाना ही साहित्य है। विचारों को प्रकट करना यदि प्रचार करना है तो सम्पूर्ण प्रभावशाली साहित्य प्रचारात्मक साहित्य है। केवल विचार-शून्य साहित्य ही प्रचार-शून्य अथवा कला मात्र के लिये हो सकता है। यह बात दूसरी है कि कोई प्रचार आपको सुहाता है, कोई प्रचार आप को दुखाता है। हमारा प्राचीन साहित्य उस समय की सामाजिक व्यवस्था के प्रति श्रद्धा का और उस समय की शासक श्रेणी के अधिकारों का समर्थन और प्रचार ही तो था।”

शुद्धसाहित्यिक, सर्वोदयी, और राष्ट्रीयजी ने मार्क्सवादी का विरोध किया “यह आप क्या कह रहे हैं?”

शुद्धसाहित्यिक ने आँखें फैलाकर पूछा—“अमूल्य रत्नों के भण्डार भारत के गौरवमय साहित्य को आप शामक श्रेणी के अधिकारों का प्रचार बता रहे हैं?”

सर्वोदयी जी ने दुहाई दी—“साहित्य में भी आप श्रेणी संघर्ष का विप भर रहे हैं?”

जिज्ञासु ने भी प्रश्न किया—“उस साहित्य में आप श्रेणी संघर्ष और श्रेणी पक्षपात कहां पाते हैं?”

मार्क्सवादी चुनौती स्वीकार कर अपने स्थान से एक बालिस्त आगे हो गये और बोले—“सुनिये, रामायण की कथा है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा में तपस्या करने वाले शूद्र का सिर काट कर पृथ्वी से पाप का बोझ हल्का किया और इस न्याय से देवता भी प्रसन्न हो गये। क्या इसका स्पष्ट प्रयोजन यह नहीं है कि शूद्र का तपस्या करके ब्राह्मण के समान बनने की इच्छा करना अपराध है, पाप है। शूद्रों की महत्ता द्विजों की सेवा करने में ही है। शूद्र यदि सेवाधर्म छोड़कर तप का धर्म अपनाये तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिये। यह ब्राह्मण के तपस्या अथवा आध्यात्मिक चिन्तन के अधिकार की ठेकेदारी का और शूद्र के लिये सेवाधर्म का प्रचार नहीं तो क्या है?”

कामरेड बोले—“और प्रजा ने या शूद्रों ने इस बात पर सभा करके या जुलूस निकाल कर कोई असन्तोष भी प्रकट नहीं किया। रामचन्द्र जी थे, मर्यादा या मार्ग दिखाने वाले। बाल्मीक ने रामचन्द्र जी के व्यवहार के रूप में यह एक आदर्श उपस्थित किया है। इतिहास साक्षी है कि सैकड़ों वर्ष तक इस आदर्श का पालन होता भी रहा है। कितना प्रबल और प्रभावशाली प्रचार था यह ? हम पूछते हैं, ‘कांग्रेसी रामराज्य’ में आज यदि राष्ट्रपति ऐसा करें तो आप सह जाइयेगा ?”

“क्या बेतुकी बात करते हो जी ?” राष्ट्रीय जी ने कुछ बिगड़ कर डांटा, “उस समय के समाज और संस्कृति से आज को परिस्थिति की क्या तुलना ?”

यही तो हम कहते हैं कि उस समय के समाज और संस्कृति से आज की परिस्थितियों की तुलना नहीं और उनमें कोई सम्बन्ध भी नहीं” इतिहासज्ञ बोले, “परन्तु महाराज, आप ही उस संस्कृति की पुनः स्थापना करना चाहते हैं। आपके पटेल साहब आज भी उपदेश देते हैं कि राजत्व का सम्मान करना भारतीय संस्कृति की परम्परा है। आज राजत्व का अधिकार उनके हाथ में है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम की भाँति ही निरंकुश होकर अपने न्याय की स्थापना करना चाहते हैं इसीलिये वे रामराज्य का आदर्श हमारे सामने पेश करते हैं। परन्तु ये निरंकुश रामराज्य किसके लिये सुविधाजनक होगा ? प्रजा के लिये या शासक के लिये ?”

“बात साहित्य की हो रही है” भद्र पुरुष ने टोका, “राजनीति को आप बीच में क्यों लाते हैं ?”

“राजनीति न सही” प्रगतिवादी बोले, “साहित्य की ही बात कीजिये। बाल्मीक, स्त्री-चरित्र के आदर्शरूप सती सीता को उपस्थित करते हैं। रामचन्द्र को सीता के सतीत्व पर झूठा सन्देह हो गया और सीता जी आग में जलकर मरने के लिये तैयार हो गयीं। वे अनुकरणीय इसलिये हैं कि उन्होंने पति से अपने सतीत्व के प्रति सन्देह का कारण पूछने को भी धृष्टता नहीं की, अन्याय के विरुद्ध दुहाई नहीं दी; क्योंकि पति तो परमेश्वर है। उसकी इच्छा ही स्त्री का धर्म है। वे सती थीं इसलिये उन्हें अग्नि जला नहीं सकी। आप ही बताइये, स्त्री के लिये पति की परम दासता का इससे बड़ा प्रचार और क्या होगा ? इस प्रचार के परिणाम में इस देश में स्त्रियों को सती किया गया या नहीं ? आजकल अग्नि तो क्या, गरम तवा या गरम घी-तेल का छींटा ही पतिव्रताओं और सतियों के बदन में छाले डाल देता है परन्तु पतिव्रत धर्म

के प्रचार की आवश्यकता अब भी शेष है । कहिए, यह साहित्य प्रचारात्मक है या नहीं ?”

“इसे आप प्रचार कहते हैं ? यह प्रचार नहीं, यह जीवन का सत्य और आदर्श है” सर्वोदयी जी बोले, “प्रचार में स्वार्थ और हिंसा की भावना होती है । यह सनुष्य के अन्तःकरण में भगवान द्वारा शाश्वत धर्म की प्रेरणा है ।”

“जी ?” कामरेड ने सिर हिलाकर पूछा, “तपस्या करने वाले शूद्र का सिर काट लेना भगवान की प्रेरणा है, अछूतों का मन्दिर-प्रवेश कराना भी भगवान की प्रेरणा है ? पति के झूठे सन्देह में स्त्री को आग में जला देना भी ईश्वरीय प्रेरणा है और स्त्री को माता और देवी कह कर फुलाना और पति की दासता के गर्व का उपदेश देना भी ईश्वरीय प्रेरणा है ?”

“यह तो आप के मन में हिंसा और द्वेष की प्रवृत्ति बोल रही है” करुणा का भाव चेहरे पर लाकर सर्वोदयी जी ने समझाया ।

राष्ट्रीय जी इस ने संतुष्ट न होकर ऊँचे स्वर में बोले—“यह तो काल धर्म है । धर्म देश, काल और पात्र के अनुसार होता है ।”

“साहित्य भी देश, काल और पात्र के अनुसार होता है ?” कामरेड ने फुलझड़ी छोड़ दी ।

“यदि धर्म देश, काल के अनुसार होता है तो वह शाश्वत नहीं हो सकता !” मार्क्सवादी ने अपना ‘त्रुप’ का पत्ता फेंक दिया ।

सर्वोदयी जी उनके तर्कों का उत्तर देने के लिए बोले—“देश और काल के परिवर्तनों के बावजूद धर्म और सत्य का मूल तत्व ‘सत्य और अहिंसा’ भगवान की प्रेरणा होने के कारण शाश्वत ही है ।”

“अच्छा सुनिये” प्रगतिवादी आगे बढ़े, “यदि सत्य का मूल शाश्वत है तो ‘सत्य हरिश्चन्द्र’ में जिस सत्य का आदर्श आप के सामने रखा गया है, क्या उसका पालन आज भी कीजियेगा ? राजा हरिश्चन्द्र ‘सत्य’ का सबसे बड़ा आदर्श इसलिये हैं कि उन्होंने ब्राह्मण को दान देने की स्वप्न में की हुई प्रतिज्ञा को भी पूरा करने के लिये अपना सर्वनाश कर लिया । उस पुण्य कार्य के प्रभाव से वे सदेह स्वर्ग चले गये । वे सदेह स्वर्ग इसलिये चले गये कि ब्राह्मण को संतुष्ट करने के लिये उन्होंने अपनी स्त्री तक को बेच डाला । कहिये, यह ही आदर्श शाश्वत सत्य है ? ब्राह्मण के आधिपत्य में यह आदर्श अवश्य शाश्वत सत्य रहा होगा । इस प्रचार का परिणाम है कि आज भी भक्त लोग स्वर्ग प्राप्ति के लिये काशी, हरिद्वार में गोदान तथा पत्तिदान करते हैं; चाहे बाद में

पत्नी को दो-चार या दस-पांच रुपये में खरीदकर लौटा लेते हैं। कहिये, आज इस आदर्श का पालन कीजियेगा ? स्त्रियाँ भी स्वर्ग जाना चाहती हैं। क्या उन्हें भी अधिकार दीजियेगा कि स्वर्ग प्राप्ति के लिये पति का दान कर दें ?

खैर, हरिश्चन्द्र सदेह स्वर्ग इसलिये चले गये कि सेवक होकर स्वामी-भक्ति का धर्म पूरा करने के लिये, स्वामी के लिये कर उगाहने का धर्म पूरा करने के लिये उन्होंने मृत सन्तान को गोद में लिये, पुत्र शोक में बिलखती माता तक के शरीर से आधी साड़ी फड़वा ली। आज भी मज्जदूर आन्दोलन को तोड़ने के लिये, स्वामी-भक्ति के और नमकहरामी द्वारा परलोक न बिगाड़ने के उपदेश दिये ही जाते हैं। हम पूछते हैं, ऐसे धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति के लिये आज आप के समाज में कौन स्थान है ? और आज आप उसे किन शब्दों से पुकारियेगा ? परन्तु राजा हरिश्चन्द्र को आप आज भी आदर्श मानते हैं और उसकी कथा को साहित्य का शाश्वत सौन्दर्य कहना चाहते हैं। मनुष्य के शोषण को पाप समझने वाला व्यक्ति इस कथा के विषय में क्या कहेगा ?”

“दासता के धर्म के प्रचार का इससे अधिक स्पष्ट उदाहरण आप और क्या चाहते हैं ?” कामरेड ने उत्तेजना से पूछा, “यह प्रचार नहीं तो क्या है ? शासक और शोषक श्रेणी के अधिकारों के समर्थन का इससे अधिक नंगा प्रचार आप और क्या देखना चाहते हैं ?”

शुद्धसाहित्यिक खिन्नता से सिर हिलाकर बोले—“करुण रस के विपाक की आदर्श इस कहानी में आप करुणा रस का आनन्द न लेकर शोषण का समर्थन देख रहे हैं ?”

“वाह रे आनन्द ?” कामरेड ने उग्र स्वर में विरोध किया, “आप आनन्द की बात कहते हैं ? ऐसा अत्याचार सुन कर हमारा तो खून जल जाता है ?”

शुद्धसाहित्यिक इनकी परवाह न कर अपनी बात कहते गये—“यह आपकी श्रेणी-संघर्ष की हिंसा-वृत्ति का परिणाम है, कहानी का दोष नहीं। वरना यह कहानी तो निश्चय ही साहित्य के शाश्वत सौन्दर्य का अति सुन्दर उदाहरण है।”

“ठीक है” वैज्ञानिक बीच में बोले, “आपको राजा हरिश्चन्द्र की धर्म-परायणता में शाश्वत सौन्दर्य दिखाई देता है। और शोषण के विरोधी को, दास श्रेणी को बांधने और अत्याचार सहने के लिये विवश करने वाली व्यवस्था की वीभत्सता दिखाई देती है। यह अपनी-अपनी परिस्थितियों और हित के आधार पर बने दृष्टिकोणों का अन्तर है।”

सर्वोदयी जी और शुद्धसाहित्यिक ने सिर हिलाकर वैज्ञानिक की व्याख्या को स्वीकार करने से इनकार कर दिया ।

शुद्धसाहित्यिक बोले — “सौन्दर्य के बारे में दृष्टिकोण का क्या झगड़ा ? श्रेणी का क्या प्रसंग ! श्रेणी राजनीति और आर्थिक झगड़ों के क्षेत्र की बात है; सौन्दर्य से उसका क्या सम्बन्ध ? जो सुन्दर है, वह चिर सुन्दर है, वह शाश्वत सौन्दर्य है । चाँद की रुपहली, दूध बरसाती चाँदनी और ऊषा की लाली के सौन्दर्य के विषय में दृष्टिकोण का क्या प्रश्न ?”

वैज्ञानिक बोले—“आप कल्पना कीजिये, एक बन्दी की कल्पना कीजिये जिसके लिये ऊषाकाल में सिर काट देने की आज्ञा दी गयी हो । उसे ऊषा की लाली कैसी लगेगी ? आपने ईद के मौके पर कुर्बानी का जुलूस तो देखा होगा । बलि के पशु को सजाकर लोग कितनी प्रसन्नता और उत्साह से चलते हैं । उसमें उन्हें अपूर्व सौन्दर्य दिखाई देता है परन्तु क्या बलि के पशु को भी वह सौन्दर्य संतोष-जनक जान पड़ता होगा ? ऐसे ही आपके ब्राह्मण-समाज को रुचिकर ‘सत्य-हरिश्चन्द्र’ का शाश्वत सौन्दर्य, दास-समाज के लिये तो शाश्वत अभिशाप ही था ।”

सर्वोदयी जी ने शान्त स्वर में उत्तर दिया—“विकृत मनोवस्था की बात दूसरी है.....”

वैज्ञानिक ने उन्हें टोक दिया—“परन्तु किस की मनोवस्था विकृत है ? जो जीवित रहना चाहता है उसकी ? या उसकी जो दूसरों को निगल लेना चाहता है ?”

अपने विचारों के अनुकूल वातावरण बनता देखकर प्रगतिवादी आगे बढ़े और अपनी बगल से एक मोटी पुस्तक निकाल कर बोले—“आप अपने प्राचीन साहित्य में श्रेणीगत सौन्दर्य का दृष्टिकोण देखना चाहते हैं तो प्राचीन साहित्य के प्रतिनिधि कवि कालिदास की रचना में ही देखिये । रघुवंश में महाराज सुदर्शन के अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण के जीवन का चित्र देखिये” पुस्तक खोल वे पढ़ने लगे, “वह कामी राजा कामिनियों १ के साथ उन भवनों में दिन-रात पड़ा रहने लगा जिनमें बराबर मृदंग बजते रहते थे और प्रतिदिन एक से एक बढ़कर ऐसे उत्सव होते रहते थे कि अगले दिन के उत्सव के धूमधड़ाके के आगे पिछले दिन का उत्सव फीका पड़ जाता था ।

२ वह सदा रनिवास के भीतर रहकर ही विहार करने लगा । उसके दर्शन के लिये जनता सदा अधीर रहती थी पर वह कभी उनकी सुध न लेता था ।
 ३ यदि कभी मंत्रियों के कहने सुनने से प्रजा को दर्शन भी देता था तो बस इतना ही कि झरोखे से एक पैर बाहर लटका देता । ४ राज-कर्मचारी लाल नखों वाले उसके चरण को नमस्कार कर आराधना करते, जो प्रभात की लाल किरणों से भरे हुये कमल के समान सुन्दर था ।”

“कहिये” टोक कर मार्क्सवादी ने शुद्धसाहित्यिक को सम्बोधन किया,
 “यह अंध राजभक्ति की प्रशंसा है या नहीं ? राजभक्ति का प्रचार है या नहीं ?”

कामरेड राष्ट्रीय जी की ओर देख गरज उठे - “क्यों साहब, आप इसी संस्कृति का पुनरुत्थान चाहते हैं ? ऐसा ही रामराज्य कायम करना चाहते हैं ? यह राजा अग्निवर्ण रामचन्द्र जी के ही पूर्वज तो थे न ? यही अधिकार प्रजा को रामराज्य में होंगे ?”

कामरेड को चुप कराने के लिये उनकी वांह खींचकर प्रगतिवादी बोले—
 “और सुनिये, कालिदास अपने ‘तेजस्वी’ महाराज की प्रशंसा करते हैं—जैसे खिली हुई कमलनियों की गंध से भरे सरोवर में हाथी हथिनियों के साथ बैठता है, वैसे ही अग्निवर्ण भी सुन्दरी स्त्रियाँ के साथ मद्य के गंध से बसी हुई पान-शाला या मदिरा-घर में पहुँचता था । १ वहाँ वे स्त्रियाँ अग्निवर्ण का जूठा मदकारी आसव प्रेम से पीती थीं । जैसे मौलसिरी का पेड़ स्त्रियों के मुख से आसव पीने की इच्छा करता है, उमी प्रणोर उन स्त्रियों के मुख से आसव पीने की इच्छा करने वाला अग्निवर्ण भी उनके मुँह का आसव पिया करता था । २ गोद में बैठाने योग्य दो ही तो वस्तुयें हैं । एक मनोहर शब्द वाली वीणा और दूसरी मधुर-भाषिणी कामिनी । इन दोनों ने राजा की गोद को सदा ही भरपूर रक्खा । ३ और सुनिये—कभी-कभी दामियाँ राजा को मार्ग दिखाती हुई उस स्थान पर ले जातीं जहाँ लताओं के बीच में सम्भोग के लिये फूलों की सेज बिछी रहती थी । उस समय राजा को यह डर होता कि यह दासियाँ जाकर रानियों से न कह दें, इसलिये राजा दामियों को फुसलाने के

-
- (२) राजा सुदर्शन महाराज रामचन्द्र के पूर्वज थे । रघुवंश सर्ग १ श्लोक ६
 (३) सर्ग १०, श्लोक ७ । (४) सर्ग १९, श्लोक ८

(१) सर्ग १९, श्लोक ११ । (२) सर्ग सर्ग १९, १२ । (३) सर्ग १९, श्लोक १३ ।

लिये उन दासियों से भी सम्भोग करके उन्हें प्रसन्न कर देता ।”४

प्रगतिवादी ने हाथ की पुस्तक बंद की ही थी कि क्रोध की छाया मे मलीन मुख महिला जी उठ खड़ी हुई और बोलीं—“यदि आप लोगों में स्त्रियों के साथ सभा में बैठने लायक सभ्यता नहीं है तो हम यहाँ नहीं बैठेंगी । हम ऐसी अश्लील बातें सहन नहीं कर सकती” वे विरोध में निष्क्रमण (वाक-आउट) कर जाना चाहती थीं ।

श्रीमती जी को आशंका हुई कि प्रोटेस्ट में ‘वाक-आउट’ न करने से शायद वे कम शर्मिली और असभ्य समझी जायेंगी, इसलिये वे भी उठ खड़ी हुईं ।

सर्वोदयी जी ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर शोक प्रकट किया—
“आप लोगों को दूसरों की, विशेष कर महिला समाज की कोमल भावनाओं और सम्मान पर आघात नहीं करना चाहिये । इस घटना से मेरा मन अति खिन्न हुआ है । जान पड़ता है, आपके अपराध के लिये मुझे आज उपवास करना पड़ेगा ।”

प्रगतिवादी ने पुस्तक एक ओर पटक दी और क्षमा सी मांगते हुए बोले—
“साहब, यह हमने नहीं लिखा है और न कालिदास ही प्रगतिवादी थे । हम तो आपको शुद्धसाहित्यिक जी के चिर, सुन्दर और शाश्वत साहित्य का एक नमूना भर दे रहे थे और यदि आप ‘कुमार सम्भव’ पढ़ें तो इससे सौ गुना ‘असह्य’ सुन्दर और शाश्वत साहित्य पाइयेगा ।”

शुद्धसाहित्यिक भी प्रगतिवादी को फटकारने के मौके से चूकना नहीं चाहते थे बोले—“भाई, साहित्य भी मौके-मौके का होता है ।”

“सत्यवचन” इतिहासज्ञ बोले, “हम तो यह कहते ही हैं कि साहित्य मौके-मौके का होता है । आप ही उसे शाश्वत बनाते हैं । आपका ‘शाश्वत’ इस युग के उपयोग की चीज नहीं क्योंकि इस युग में सभ्य स्त्री-पुरुष एक साथ बैठते हैं । यह बात तो प्रमाणित हो ही गयी कि आज हमारी मध्यम श्रेणी की महिलाओं की आचार-निष्ठा और शालीनता रामराज्य की रानियों से भी बहुत ऊँची है ।”

यह बात सुनकर महिला और श्रीमती जी फिर अपने स्थान पर बैठ गयीं ।

इतिहासज्ञ कहते गये—“उस युग में उच्च वंश की स्त्रियों को ‘हे सुन्दरी, हे मोहनी, हे नितम्बिनी’... क्षमा कीजिये, आई एम सो सारी... कह कर

पुकारा जाता था और वे अपना अपमान नहीं समझती थीं। आज यदि किसी महिला को उनके पति की श्रीमती न कह कर उनके अपने नाम से पुकार लिया जाय तो उनका हाथ चप्पल की ओर बढ़ने लगता है।”

“आप हृद् करते हैं।” श्रीमती जी ने क्रोध या झोंप से गुलाबी होते चेहरे से टोका।

“जी, अच्छा ; यह भी ठीक नहीं ?” इतिहासज्ञ ने फिर बात बदली, “मेरा अभिप्राय है कि आज की महिला का व्यक्तित्व उस समय की महिला के व्यक्तित्व से अधिक उन्नत, विकसित और आत्म-सम्मानपूर्ण है। उस समय का साहित्य केवल पुरुषों के भोग के दृष्टिकोण से लिखा जाता था। पुरुषों से समता के अधिकार का दावा करने वाली स्त्रियों के सम्मान के दृष्टिकोण से नहीं।”

जिज्ञासु ने प्रश्न किया—“परन्तु आप तो प्राचीन साहित्य में श्रेणीगत दृष्टिकोण दिखा रहे थे।”

“आपको वह दिखाई नहीं दिया ?” मार्क्सवादी ने कुछ विस्मय भे प्रश्न किया, “आप इस साहित्य को दो तरह देखिये। पहली बात कि ये वर्णन किस श्रेणी और समाज का है। किस श्रेणी और समाज को यह वर्णन रुचिकर और संतोषप्रद जान पड़ता है। आपको इस वर्णन से आनन्द नहीं मिलता बल्कि ग्लानि होती है। आप ऐसे सुख का स्वप्न भी नहीं देखते क्योंकि आपकी सौन्दर्य की श्रेणीगत कल्पना इसमें भिन्न है परन्तु हमारे राजा महाराजा लोग आज भी यह करना चाहते हैं; बस चलने पर करते भी रहे। पटियाला, इंदौर, काश्मीर के महाराजाओं के नाम इसके लिये प्रसिद्ध थे। तीन पत्नियाँ होने की कल्पना से आपके रोंगटे खड़े हो जायेंगे। महाराजा अपने सम्मान के लिये तीन सौ आवश्यक समझते थे। सौन्दर्य भोग की यह उनकी श्रेणीगत, सामन्तवादी भावना थी। अंग्रेज सरकार को उनके इन कारनामों का पता चल जाता था तो वह उन्हें कान पकड़ कर गद्दी से उतार देती थी क्योंकि अंग्रेज सरकार सामन्तवाद की नैतिकता और सौन्दर्य की भावना को जहालत समझती थी और पूँजीवादी संस्कृति और आदर्श में आस्था रखती थी। कालिदास के समय का साहित्य राज्यधिकार भोगने वाली वा सामन्त श्रेणी के नैतिक और सौन्दर्य के आदर्श से राज दरबार के लिये लिखा जाता था और वहाँ ही इसका रसास्वादन भी होता था……”

इतिहासज्ञ बीच में टोक बैठे—“यहाँ तक कि काव्य और साहित्य में

निम्न-श्रेणी का और निम्न-श्रेणी के जीवन का चित्रण भी दोष माना जाता था । काव्य में खेतों में रथ दौड़ा कर शिकार खेलने वाले राजा का वर्णन होना चाहिये था, खेत बनाने और जोतने वाले किसान का नहीं । ऐसे वर्णन से महाराज और सामन्तों को ग्लानि होती थी । जिस चर्खे को आप अपना राष्ट्रीय चिन्ह बनाये फिरते रहे, उस चर्खे का और चर्खा कातने वाली का या उपले थापने वाली का वर्णन उस साहित्य में निषिद्ध था । काव्यादर्श और काव्य-दर्पण में लिखा है कि महाकाव्य का नायक धीरोदात्त पुरुष, राजा अथवा देवता होना चाहिए । वह साहित्य निम्न क्या मध्यम श्रेणी के वर्णन को भी निषिद्ध मानता था । वह राजमत्तावादी समाज था । राजा और उसके मामन्त शासक वर्ग का दृष्टिकोण ही उस समय के समाज का दृष्टिकोण था । वहाँ वर्णन होता था केवल भोग्य नारियों का, समान अधिकार मांगने वाली नारियों का नहीं । उन राजाओं के गीत गाये जाते थे जिनके भोग के साधन जुटाने के लिये देश की-सम्पूर्ण प्रजा उपस्थित थी । जैसे भोग का वर्णन कालिदास ने किया है, क्या वह सर्व-साधारण जनता के लिये सम्भव हो सकता था ?.....

“उस समय ऐसी कंगाली थोड़े ही थी” राष्ट्रीयजी ने बीच में टोक दिया, “उस समय देश सम्पन्न था ।”

“सम्पन्न ?” इतिहासज्ञ ने पलट कर पूछा, “तो सभी लोग सौ-सौ, पचास पचास रानियां, दूतियां और दासियां रखते होंगे ? तो माहब, वे इन दूतियों और दासियों के प्रति क्या करते होंगे ? जिस समाज में दास-प्रथा रही हो, वहाँ समानता और सर्व-साधारण प्रजा की स्थिति का प्रश्न ही क्या ? सर्व-साधारण को छोड़िये, ये भोग तो सम्पन्न मध्यम श्रेणी की भी कल्पना के बाहर की बात है ओर न यह उनका साहित्य ही है ।”

इतिहासज्ञ सांस लेने के लिये चुा हुए थे कि शुद्धाहित्यिक शान्त मुद्रा में हाथ उठाते हुये बोले — “देखिये, इसीलिये तो हम कहते हैं कि साहित्य भौतिक जीवन का साधन नहीं, सूक्ष्म मानसिक सुख का साधन और स्रोत है । साहित्य के साधन हल, हथौड़ा, सभा और जुलून नहीं, सूक्ष्म कल्पना है । भौतिक जीवन में संतोष और कल्पना में ऊँची उड़ान—“प्लेन लिविंग एण्ड हाइ थिंकिंग !” उनका एक हाथ अपने सिर से भी ऊँचा आकाश की ओर संकेत करता हुआ उठ गया, “यह है साहित्य का मार्ग !”

कामरेड ने ऊँचे स्वर में टोक दिया—“यानि, साहित्य खामखयाली की पीनक है ?”

“नहीं” भद्रपुरुष बोले, “साहित्य का जीवन से सम्बन्ध होना तो जरूरी है। शुद्धसाहित्यिक ने उसी बात को दूसरे शब्दों में दोहराया—“साहित्य का सम्बन्ध जीवन से जरूर है परन्तु सौन्दर्य का सुख केवल शारीरिक भोग द्वारा ही नहीं, कल्पना द्वारा भी लिया जाता है। यही तो मनुष्य और पशु में अन्तर है। कला का आधार तो कल्पना है, इस सत्य को आप क्यों भूल जाते हैं?”

“कल्पना के अस्तित्व से इनकार हम नहीं करते” मार्क्सवादी ने स्वीकार किया, “परन्तु कल्पना मनुष्य के ज्ञान और परिस्थितियों से स्वतन्त्र नहीं हो सकती। उदाहरणतः सभी जानते हैं कि ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड आठवें को इंग्लैण्ड की प्रजा ने, या पूँजीपति श्रेणी ने मिसेज सिम्पसन से विवाह करने की आज्ञा नहीं दी। आपको याद है, मिसेज सिम्पसन से विवाह करने के लिये सम्राट को अपना सिंहासन छोड़ना पड़ा। क्या सम्राट जहाँगीर या सम्राट चन्द्रगुप्त या महाराज अग्निवर्ण और दुष्यन्त के समय में भी यह कल्पना की जा सकती थी कि प्रजा सम्राट को किसी स्त्री से विवाह करने से रोक दे? इस बात की कल्पना केवल प्रजातन्त्र के ही युग में की जा सकती है, सामन्ती युग में नहीं की जा सकती थी। और उदाहरण लीजिये :—

“जिस समाज में विवाह की प्रणाली न हो, वहाँ पतिव्रत धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस समाज में निजी सम्पत्ति और उत्तराधिकार से वंश की सम्पत्ति पर मिल्कियत का रिवाज न हो वहाँ भाग्य से किसी के धनी और निर्धन पैदा होने की कल्पना नहीं की जा सकती। मनुष्य-समाज जिस प्रकार के साधनों से अपने निर्वाह और जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ पैदा करता है, उसी के अनुरूप उसके समाज का रूप होता है। यदि पैदावार के साधन सामाजिक सम्पत्ति नहीं होंगे तो अवश्य ही कुछ लोग साधनहीन होंगे और कुछ के पास बहुत अधिक साधन होंगे। यही स्थिति समाज की श्रेणियों में बाँट देती है। पैदावार के लिए श्रम साधनहोनों को करना पड़ता है और पैदावार पर मिल्कियत मालिक श्रेणी की होती है। मालिक श्रेणी सदा ही चाहती है कि पैदावार का अधिक से अधिक भाग अपने पास रखे। श्रम करने वाली श्रेणी अपने निर्वाह के लिये पैदावार का भाग मांगती है। यही संघर्ष की जड़ है। एक समय समाज के पास पैदावार के मुख्य साधन के रूप में केवल भूमि ही थी। उस समय भूमिपति ही समाज के मालिक और शासक थे !”

वे कहते गये—“निरंकुश शोषक शासक वर्ग निरंकुश भोग की कल्पना में

सुख पायेगा । शोषित वर्ग अपनी मुक्ति के लिये संघर्ष और बन्धनों को तोड़कर आत्मनिर्णय का अवसर पाने की कल्पना से सुख अनुभव करेगा । समान अवसर में विश्वास करने वाला वर्ग ऐसे सुख की कल्पना करेगा जो समाज में सर्व-साधारण के लिये सम्भव हो । इन श्रेणियों के जीवन को चाहे आप व्यक्तिगत क्षेत्र में देखिये चाहे सामूहिक या सामाजिक क्षेत्र में, इनकी प्रवृत्ति आपको श्रेणीगत मनोवृत्ति के अनुकूल ही मिलेगी.....।”

जिज्ञासु ने टोका—“और मध्यम श्रेणी के सुख की कल्पना ?”

“वह तो है न, “हमें तो शामे गम में काटनी है जिन्दगी अपनी’... यह है सुख-स्वप्न मध्यम श्रेणी का ।” कामरेड ने उत्तर दिया ।

शायद सभी लोग इस रूखी बहस से उकता रहे थे । इशारा पाते ही, महफिल का मूड देखकर मौजी ने लरजती हुई पुरदरद आवाज में गुनगुनाना शुरू कर दिया । गजल के दूसरे शेर पर पहुँचे थे कि श्रीमती ने अनुरोध कर दिया—“मौजी साहब, जरा खुलकर गाइये ।”

मौजी साहब पूरे उत्साह से गा उठे :—

“अगर कुछ थी तो बस यह थी तमन्ना आखिरी अपनी,
कि तुम साहिल पै होते और किशती डूबती अपनी ।
खुदा के वास्ते ज़ालिम घड़ी भर के लिये आजा,
बुझानी है तेरे दामन में शमए जिन्दगी अपनी ।”

समा बंध गया । शुद्धसाहित्यिक झूम गये—“वाह, क्या कल्पना की है; डूबते समय किनारे खड़े प्यारे को देखकर ही संतोष हो रहा है । और फिर प्रेमी के आंचल से अपने जीवन का दीपक बुझाने का संतोष ! वाह, वाह... कितनी सूक्ष्म कल्पना है और कितनी ऊँची उड़ान है । भौतिक भोग की कल्पना है ही इसमें कहाँ ?” उन्होंने मार्क्सवादी और प्रगतिवादी को चुनौती दी और विद्रूप से मुस्करा कर बोले, “जाने आपकी यथार्थ और संघर्षवादी कविता क्या होगी ?”

कामरेड कब चूकने वाले थे—“सुन लीजिये” उन्होंने उत्तर दिया और घूँसा तान कर गर्जन के स्वर में गा उठे—

“एक साथ है कदम, जहान साथ है,
कामगार साथ है, किसान साथ है ।
लीडरो न गाओ गीत रामराज का,
इस सुराज का !

क्या हुआ किसान कामगार राज का ?
 भूख आग है, आग गोलियों से बुझ न पायेगी,
 फैल जायेगी ।

जेल भेज दोगे ; जेल को जलायेगी,
 तख्त ताज, साज-बाज सबको खायेगी ।

भूख आग है तुम न समझोगे, बुरी तुम्हारी जात है ।”

कामरेड भी गाना जानते थे । आवाज़ बुलन्द और गहरी थी । कमरा गूँज उठा, जैसे मारू बाजा बज गया हो । समा बिलकुल दूसरा हो गया । सब चुप से रह गये । मार्क्सवादी ने चुप्पी तोड़ी :—

“बस यह देख लीजिये, दोनों तरह के साहित्य का अन्तर ! मध्यम श्रेणी का साहित्य व्यक्तिगत आत्मलिप्ति का साहित्य है, वह स्वान्तः सुखाय की बात कहकर झूठा सन्तोष करता है । उसकी परिस्थिति उसे सुख की इच्छा और कल्पना का संस्कार और अवसर तो देती है परन्तु साधन नहीं देती इसलिये वह काल्पनिक आत्मलिप्ति में सुख पाता है । जो चाहता है वह पा नहीं सकता तो न पाने को ही सुख समझना चाहता है । वह श्रृंगाररस का सुख वियोग के रूप में भोगना चाहता है । यह उसी भौतिक, सामाजिक परिस्थितियों में परास्त मनोवृत्ति और कल्पना है । औद्योगिक समाज के श्रेणी संघर्ष का परिणाम है कि मध्यम श्रेणी साधनहीन वर्ग में मिलती जा रही है परन्तु उसका परम्परागत सफेद पोशी का अहंकार शेष है । इसलिये वह ऐसे सुख को कल्पना करती है जिसे साधनों का अभाव न बिगाड़े । ये श्रेणी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात तो करती है परन्तु अवसर के बिना सदा अभाव से पीड़ित रह कर । स्वतंत्रता का अर्थ क्या है ?

“कलाकार और साहित्यिक व्यक्तिवाद की शरण तभी लेता है जब वह सामूहिक जीवन में संघर्ष और असुविधा देख कर मैदान में भागना चाहता है । वह अपनी और अपनी श्रेणी की महत्वाकांक्षा के पूर्ण होने की सम्भावना नहीं देखता तो अभाव को, वियोग को, आत्मरति को ही सुख बताने की दार्शनिकता का दम्भ करता है ।

दूसरी ओर मजदूर श्रेणी अपनी संघ-शक्ति के साधन से उत्कर्ष और संघर्ष की कल्पना करती है क्योंकि उसका भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि जीवन के साधनों को उत्पन्न करने की शक्ति अपने में अनुभव करती है ।”

सर्वोदयी जी ने अपनी आतुर और चिन्तित दृष्टि से सब लोगों की ओर

देखकर बात बदल दी—“साहित्य में गाली देना बुरी तुम्हारी जात कहना घृणा और हिंसा का प्रचार करने की प्रवृत्ति क्या समाज के लिये कल्याणकारी है ?”

कामरेड ने छाती ठोक कर उत्तर दिया—“अवश्य ! हितकर और अहितकर को पहचानना आवश्यक है । जो अहितकर है उसे समाप्त करने के लिये उससे घृणा करना ही चाहिये । जो समाज के लिये हानिकारक है, जो वास्तव में समाज की हिंसा है, उससे प्रेम करने का दम्भ हम नहीं कर सकते । बुरी चीज को समाप्त करने के लिये उसके प्रति घृणा ही हमारी शक्ति को जागरित करती है, हमें नैतिक बल देती है । आत्मरक्षा और शत्रु का नाश एक ही उद्देश्य के लिये दो क्रियायें हैं । एक चीज को बुरा भी कहना और उससे प्रेम भी करते जाना, केवल दम्भ है, इसका अर्थ है बुरे को फुसला कर उससे समझौता करने की इच्छा ।”

“यह ठीक वैसा ही है” प्रगतिवादी ने जोड़ा, “जैसे उर्दू शायरी में माशूक को जालिम पुकारा जाता है ।”

कहकहा समाप्त होने पर जिज्ञासु ने फिर प्रश्न कर दिया—“तो आप आधुनिक प्रगतिशील साहित्य का क्या ध्येय और आदर्श समझते हैं ?”

“प्रगतिशील श्रेणी की भावना की अभिव्यक्ति प्रगतिशील साहित्य है” प्रगतिवादी ने उत्तर दिया, “बीते हुये समय और बीती हुई परिस्थितियों में जो व्यवस्था उपयोगी थी उस का समर्थन करने वाली सत्य और न्याय की धाराणाओं को, जो अब स्वयं परस्पर-विरोधी हो रही हैं—बदल कर आधुनिक परिस्थितियों में समाज के लिये विकास का अवसर देने वाली सत्य और न्याय की धाराणाओं का समर्थन करना प्रगतिशील साहित्य का काम है । प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आने वाली अन्ध-विश्वास और रूढ़िवादी अड़चनों को दूर करना है । प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है, समाज को शोषण के बन्धन से मुक्त करने के कार्यक्रम में, प्रगतिशील क्रान्तिकारी सर्वहारा श्रेणी का सबल साधन बनना । प्रगतिशील साहित्य का मार्ग काल्पनिक सुखों की अनुभूति के भ्रमजाल को दूर करके मानवता की भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिये प्रेरणा देना है ।”

“हम सीधी बात क्यों न कहें” इतिहासज्ञ बोले, “समाज के नेतृत्व और शासन का अधिकार भूमिपति सामन्तों के हाथ से पूंजीपतियों के हाथ में गया और अब श्रम करने वालों की बारी है । सामन्त श्रेणी के साहित्यिकों ने अपनी श्रेणी के हित के अनुकूल व्यवस्था को मान्यता देने का और उसकी नैतिकता

के प्रचार का काम किया । राजा को ईश्वर मानने की, स्वामी को प्रभु मानने की शिक्षा दी । इस व्यवस्था का उल्लंघन करने से परलोक में दण्ड का भय दिखाया ।

“पूँजीपति श्रेणी के अम्भुदय का काल आने पर पूँजीपति समाज के साहित्यिकों ने मनुष्यों के समान अधिकारों का, व्यापारिक स्वतंत्रता का, सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार का, प्रजातंत्र का और राष्ट्रीयता का प्रचार किया । पैदावार के साधनों में पूँजी को सर्वोपरि स्थान दिया और पूँजी को ही न्याय और नैतिकता का आधार मानने का प्रचार किया । आज पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाज के विकास को आगे ले चलने में और समाज को जीवन-रक्षा और विकास का अवसर दे सकने में अममर्थ हो गयी है । इस श्रेणी का स्वार्थ समाज के लिये घातक हो रहा है इसलिये समाज का नेतृत्व पूँजीवादी व्यवस्था के बन्धनों को तोड़ने वाली श्रेणी—पर्वहारा मजदूर श्रेणी के हाथों में जा रहा है ।

“इस श्रेणी के साहित्यिक, प्रगतिवादी साहित्यिक का काम है कि संघर्ष में अपनी श्रेणी को सबल बनाने वाली और समाज की आधुनिक परिस्थितियों में विकासशील नैतिकता का प्रचार करे । समाज के लिये घातक पूँजीवादी बन्धनों की अनैतिकता और अन्तरविरोधों को प्रकट करे और देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था अपने हाथ में लेने के संघर्ष में प्रगतिशील मजदूर श्रेणी को सहायता दे ।”

“यह तो संघर्ष की बात हुई, साहित्य और कला की बात नहीं हुई !” इतिहासज्ञ की बात उड़ा देने के भाव से शुद्धसाहित्यिक हाथ उठाकर बोले ।

“यदि जीवन संघर्ष है और कला जीवन की भावना की अभिव्यक्ति है तो कला संघर्ष का मार्ग दिखाये बिना नहीं रह सकती । केवल निरर्थक कला ही संघर्ष द्वारा विकास की भावना और प्रयत्न से शून्य हो सकती है ।” इतिहासज्ञ ने आग्रह किया ।

कामरेड ने तीखे स्वर में प्रश्न किया—“क्या कोई कला अभिव्यक्ति-शून्य हो सकती है ? अभिव्यक्ति को आप प्रचार नहीं तो क्या कहेंगे ?”

शुद्धसाहित्यिक ने दीवार पर लटके, संध्याकाश के नीचे सिन्दूरी होते हिमाच्छादित पर्वत शृंगों के चित्र की ओर संकेत कर पूछा—“आप इस चित्र को कला मनाते हैं या नहीं ? मानते हैं तो इसे किस बात का प्रचार कहेंगे ?”

कामरेड उस सुन्दर चित्र को कलाहीन कहने का साहस न कर सके और

चुप देखते रह गये परन्तु मार्क्सवादी ने तुरन्त उत्तर दिया—“यह चित्रकला की सुन्दर कृति है और यह हिमाच्छादित पर्वत-शृंगों के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है, उस सौन्दर्य को आप तक पहुँचाने का प्रयत्न है ।”

शुद्धसाहित्यिक उछल पड़े—“बस यही तो, यही तो ! यह सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य; आपको मानना पड़ेगा !” उन्होंने मार्क्सवादी की ओर तर्जनी उठाकर पराजय स्वीकार करने की चुनौती दी ।

मार्क्सवादी ने पराजय स्वीकार करने से सिर हिलाकर इनकार में उत्तर दिया—“यह सौन्दर्य भी सौन्दर्य के लिये नहीं, मनुष्य के ही लिये है ।”

शुद्धसाहित्यिक ने तीखे स्वर में फिर टोक दिया—“परन्तु इस सौन्दर्य में आपका श्रेणी-संघर्ष कहाँ है ? इस रचना में श्रेणी-भावना और श्रेणी-संघर्ष कहाँ है ?”

मार्क्सवादी ने भी ऊँचे स्वर में उत्तर दिया—“क्या कला केवल इन चित्रों, नदियों और पर्वतों के वर्णनों और चित्रण तक ही सीमित है ? यदि कला की सीमा केवल प्रकृति की शोभा को निहार कर मुग्ध होना ही है तो आपकी बात सही हो सकती है परन्तु प्रकृति को भी भावना शून्य होकर नहीं देखा जा सकता । कालिदास और सुमित्रानन्दन पंत नदी की लहरों की गति देख कर, नारी की जाँघ पर से वस्त्र सरकाने की कल्पना कर संतुष्ट होते हैं और सोवियत तुर्कमानिस्तान का कलाकार बर्दी नदी की धारा को पुकार कर, अपने रेगिस्तान के बंजर प्रदेशों को स्तन-पान कराकर, उर्वरा बनाने का अनुरोध करता है । कहिये, प्रकृति की शोभा देखने में मनुष्य के दृष्टिकोण का महत्व रहता है या नहीं ?”

बात बहुत बढ़ चुकी थी इसलिये वैज्ञानिक ने उसे समाप्त करने के भाव से समाधान किया—“कला का प्रयोजन मनुष्य जीवन में सामर्थ्य की वृद्धि और माधुर्य की सृष्टि करना है । जीवन में माधुर्य की अनुभूति कर पाने के लिये जीवित रह सकना आवश्यक है ।) मजदूर श्रेणी की धारणाओं और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रगतिशील साहित्य सर्व-साधारण के लिये जीवन के अवसर की सम्भावना की मांग करता है । वह समाज के किसी भी व्यक्ति को, वह चाहे पूँजीपति हो या मजदूर, जीवन के साधनों से वंचित नहीं रहने देना चाहता । वह इस उद्देश्य के लिये प्रतिज्ञाबद्ध है । इस उद्देश्य से विरोध उसी वर्ग या व्यक्ति को हो सकता है जो सर्व-साधारण के साधनहीन और अवसरहीन बने रहने में ही अपनी सत्ता की रक्षा समझता है ।”

पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता

एक दिन अवसरवश शुद्धसाहित्यिक जी एक रिक्शा पर सवार हो कर चक्कर क्लब पहुँचे ।

सड़क पर से शुद्धसाहित्यिक जी का झुंझलाहट भरा स्वर सुनाई दिया—
“तुम्हें बात करने की तमीज़ नहीं है ?” ऐसे बदतमीज़ी से बोलोगे तो एक झाँपड़ देंगे!”

अनुमान हुआ कि रिक्शावाला शुद्धसाहित्यिक जी को परेशान कर रहा है । मौजी और कामरेड लपक कर उनकी सहायता के लिये बाहर पहुँचे । मामला रफ़ा-दफ़ा कर इन तीनों के भीतर लौट आने पर भी शुद्धसाहित्यिक जी का रोष शान्त न हुआ था । वे कहते जा रहे थे—“कैसे बदतमीज़ होते हैं यह रिक्शावाले ! देखिये तो, भले आदमी की इज्जत पर हाथ डालने के लिये तैयार हो जाते हैं.....!”

रिक्शा चलाने वाला अदना आदमी किसी सफेदपोश का अपमान कर जाये, यह बात राष्ट्रीय जी को बहुत बुरी लगी—“बदतमीज़ी कर रहा था तो आपने एक थप्पड़ क्यों नहीं दिया.....को ?” राष्ट्रीय जी अपनी आस्तीन चढ़ाकर क्रोध को व्यवहारिक रूप दे सकने के लिये गरज उठे ।

एक भले आदमी का अपमान होने की बात सभी को बुरी लगी । इति-हासज्ञ ने माथे पर त्योरी डाल कर प्रश्न किया—“आखिर बात भी क्या ? क्या बदतमीज़ी की उसने ?”

शुद्धसाहित्यिक जी का क्रोध सहानुभूति और समर्थन पाने के कारण और भभक उठा । ऊँचे स्वर में बोले—“अजी बदतमीज़ी वह क्या करता ? कहने लगा, छः आने तुमने कैसरबाग के कहे थे !” हमने कहा—तू-तड़ाक का क्या मतलब ? तुम्हें जो मांगना है, अदब से माँगो !”

“अरे,” उपेक्षा प्रकट करने के लिये कामरेड बोल उठे, “बस इतनी ही बात थी ? हम तो समझे थे कि रिक्शावाला शुद्धसाहित्यिक जी की शारीरिक कोमलता का अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से इनकी सफेद पोशी पर दाग लगा देने की धमकी देकर, छः आने की जगह दस आने लेने की कोशिश कर रहा था ।”

शुद्धसाहित्यिक जी और भी बिगड़ उठे—“भाड़ में गये तुम्हारे छः आने और दस आने ! तुम्हें हर बात में आर्थिक दृष्टिकोण ही दिखायी देता है । चार आना पैसा बड़ा है या आदमी की इज्जत ?”

कामरेड झोंपने के बजाय हँस दिये—“साहित्यिक जी, आप भी तो रिक्शा वाले से ‘तू-तड़ाक’ कर रहे थे, उसे झाँपड़ मारने की धमकी दे रहे थे !”

राष्ट्रीय जी उत्तेजित होकर बीच में चिल्ला उठे—“यानी, एक भला आदमी और कुली-कबाड़ एक हो गये ! आग लगे इस कामरेडी और समाज-वाद में । समाज में किमी की इज्जत और आदर कुछ नहीं ।”

कामरेड शायद साहित्यिक जी को खिझाने पर तुले हुए थे । फिर बोल उठे—“आदर तो शुद्धसाहित्यिक जी को रिक्शावाले का करना चाहिए था । वह इन्हें अपनी कमर पर घसीट कर इतनी दूर लाया । इन्हें चाहिये था, उसे धन्यवाद देते ! उल्टा उम्मीद कर रहे हैं कि वह दामों के लिये इनके सामने गिड़गिड़ाता और इन्हें सलाम करके जाता । साहित्यिक जी किस नाते आदर के अधिकारी हैं ? क्या इसलिये कि चल नहीं सकते ? अपाहिज होने का क्या आदर ?”

“अपाहिज हो तुम !” शुद्धसाहित्यिक जी बहुत क्रुद्ध हो गये, “जो पचहत्तर रुपल्ली माहवार पर अपने आपको बेचते हो । हम तुम्हारे जैसे दस को नौकर रख सकते हैं ।”

कामरेड ने कहकहा लगा कर अधिक कड़वी बात कहने के लिये मुंह खोला था कि मार्क्सवादी ने इन्हें रोकने के लिये उनका हाथ थाम लिया और बोले—“साहित्यिक जी सुनिये, अभी आप बिगड़ रहे थे कि कामरेड को हर बात में आर्थिक दृष्टिकोण ही दिखाई देता है । अब आप स्वयं ही आर्थिक आधार पर अपने अधिक समर्थ होने और आदर के अधिकारी होने का एलान कर रहे हैं । इसी अधिकार से आप रिक्शावाले से भी सलाम की आशा करते हैं । यह आदर मनुष्य का या उसकी उत्पादक शक्ति का नहीं, समाज की व्यवस्था पर शासन करने वाली पूँजी का ही है।”

सर्वोदयी जी अपना हाथ, भगवान बुद्ध की तरह शान्त-मुद्रा में ऊपर उठा कर टोक बैठे—“धन और माया का आदर आप लोगों की भौतिकतावादी पश्चिम की सभ्यता और संस्कृति का परिणाम है। हमारी संस्कृति में तो सदा त्याग का ही आदर होता आया है। हमारे देश में तो बनों में तपस्या करने वाले ऋषियों ही का आदर था। ऋषि लोग चक्रवर्ती महाराजाओं के माथे पर अपने पाँव के अंगूठे से तिलक कर देते थे और राजा लोग अपने आपको धन्य समझते थे। हमारे देश में ‘बापू’ से अधिक आदर किसका ...”

वैज्ञानिक ने तिलमिला कर टोक दिया—“जो व्यक्ति दूसरे के माथे पर अपना पाँव लगाने की धृष्टता करता है, उसे आप त्यागी कहेंगे ? जो व्यक्ति अपने पाँव को दूसरे व्यक्ति के माथे से अधिक पवित्र समझता है, उससे बढ़ कर अहंकारी और दम्भी कौन होगा ? इस अहंकार और दम्भ को आप त्याग कह सकते हैं ?”

वैज्ञानिक सांस लेने के लिये रुके ही थे कि इतिहासज्ञ बोल उठे—

“प्राचीन काल में ऋषियों का आदर इसलिये नहीं होता था कि वे भूखे मरते थे या उनके पास आवश्यकतायें पूरी करने के साधन नहीं थे। जिन ऋषियों को राजा लोग सोने से सींग मढ़ी सी-सी गौएँ और पालकी ढोने वाले दास और दासियाँ भेंट में देते थे, उनकी गरीबी और निर्धनता की बात करना मिथ्या ढोंग है। ऋषियों का आदर इसलिये था कि वे न हल जोतते थे और न सिर पर बोझ उठाते थे। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुयें प्राप्त करने के लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पड़ता था। उनकी आवश्यकतायें अपूर्ण भी नहीं रहती थीं, क्योंकि वे उस कालकी शासन व्यवस्था में साक्षीदार थे।”

“क्या कहे चले जा रहे हैं आप !” राष्ट्रीय जी खिन्न स्वर में बोल उठे, “कणाद जैसे ऋषि जो खेतों में गिरा हुआ अन्न बटोर कर निर्वाह करते थे और श्वेतकेतु बेचारे तो भूख से व्याकुल होकर आक के पत्ते खाकर अंधे हो गये थे। आप बता रहे हैं कि ऋषि लोग पालकियों पर सवारी करते थे।”

इतिहासज्ञ अधिक तीखे स्वर में बोले—कणाद जी महाराज यदि खेती के लिए मेहनत न कर दूसरों के खेतों में गिरे अन्न के दाने चुगते फिरते थे तो यह उनकी अपनी सनक रही होगी। लेकिन आप जानते हैं कि ऋषियों की आवश्यकतायें पूरी करना, उनकी सेवा करना राजाओं और सेठों का कर्त्तव्य समझा जाता था। यदि कणाद जी महाराज अपनी सनक से दुख उठाते थे तो किसी दूसरे का इससे क्या भला हुआ ?”

सर्वोदयी जी के हाथ और नेत्र उत्तेजना से विस्मय की मृद्रा में फँल गये और उन्होंने ऊँचे स्वर में प्रश्न किया—“किसी का क्या भला हुआ ? अरे, आप क्या कह रहे हैं ? हमारे ऋषि लोग जो अमर ज्ञान इस देश को उत्तराधिकार में दे गये हैं, उसे आप कुछ समझते ही नहीं ? अरे वही तो मनुष्य के जीवन का वास्तविक तत्व है, वही तो मनुष्य-जीवन में शान्ति का मूल और शाश्वत सूत्र है ।”

वैज्ञानिक हाथ हिलाकर ऊँचे स्वर में बोले—“बहुत अच्छा, यदि ऋषि लोग आप को मनुष्य-जीवन की वास्तविक सफलता का नुसखा दे गये हैं तो देश की इस कठिनाई के समय, भूखी और नंगी, हाय-हाय करती जनता के दुख का उपाय आप ऋषियों के बताये नुसखे से क्यों नहीं करते ? इस ब्रह्म-ज्ञान द्वारा आज तक कितने आदमियों ने कष्टों से मुक्ति पायी है ? ऋषियों से पाये ब्रह्म-ज्ञान द्वारा मनुष्य-समाज की कौन आवश्यकता पूरी हुई है ? भौतिक ज्ञान ने मनुष्य-समाज की उन्नति में जो सहायतायें दी हैं, मनुष्य को जैसे प्रकृति पर विजय पाने योग्य बनाया है; वह आपके सामने है । ब्रह्म-ज्ञान ने मनुष्य-समाज के लिये या इस ब्रह्म-ज्ञानी देश के लिये क्या किया है...?”

सर्वोदयी जी इन्हें फिर टोक बैठे—“प्रकृति पर विजय ? यह आप के भौतिकवाद का झूठा अहंकार है ? क्या आपने मृत्यु को जीत लिया है ? क्या आप अपनी इच्छा से ऋतुओं को बदल सकते हैं ? बिना पृथ्वी के अन्न उत्पन्न कर सकते हैं ? मृत्यु को जीता था हमारे ऋषियों ने, जिन्हें मृत्यु का भय ही नहीं रहा था ?”

मार्क्सवादी ने उनसे भी तीखे और अधिकार पूर्ण स्वर में उत्तर दिया—“आपके ऋषियों ने मृत्यु को जीत लिया होता तो आज आपको उनकी झूठी बकालत करने की आवश्यकता न पड़ती । वे स्वयं ही यहां बैठे होते । एक दिन मृत्यु आयेगी, इस भय से समाज के प्रति अपना कर्तव्य छोड़कर जंगल में जा बैठना मृत्यु पर विजय नहीं, मृत्यु का उग्र भय है; सदा मृत्यु की ही बात सोचते रहना है । भौतिक ज्ञान ने अवश्य मृत्यु को पराजित किया है । जिन अनेक रोगों को आप केवल ईश्वर की इच्छा और असाध्य समझते थे, आज वे कितनी सरलता से वश में आ जाते हैं । साधन होने पर निमोनिया और टाइफाइड आज चुटकी बजाते ठीक होते हैं, मलेरिया और हैजे को आज आप फँलने से रोक सकते हैं, नदियों की दिशा बदल सकते हैं, हवा में उड़ सकते हैं, महामारी और बाढ़ का उपाय कर सकते हैं, बंजर मरुभूमि को

उपजाऊ बना सकते हैं, योरूप में मौजूद पशुओं को यहाँ लाये बिना उनकी नस्लें यहाँ पैदा कर सकते हैं, अपने मकानों में अपनी इच्छानुसार गरमी-सरदी पैदा कर सकते हैं। प्रकृति पर विजय पाने का अर्थ प्रकृति को बदल देना नहीं; इसका अर्थ है, मनुष्य को कुचल देने वाली प्रकृति को मनुष्य के लिये उपयोगी और मनुष्य की सेविका बना देना.....”

सर्वोदयीजी फिर टोक बैठे—“परन्तु क्या इससे समाज में शांति हो गयी ?”

कामरेड ने बिगड़ कर उत्तर दिया—“आपके ऋषियों की शांति का तो आदर्श था—‘अजगर, करे न चाकरी कागा करे न काम, दास मलूका कह गये सब के दाता राम।’ आपके ऋषि और राजा, प्राचीन शासक और शोषक समाज के मुखिया थे। वे समाज के लिये पैदावार के कोई श्रम नहीं करते थे। श्रम से पैदावार करने वालों, लुहार, चमार, बढ़ई, धोबी, माली, तेली, जुलाहे और कृषक का न कोई आदर था न अधिकार। वे सब अन्त्यज और शूद्र कहे जाते थे और उनका धर्म था केवल सेवा करना, पदार्थों को पैदा करके मालिकों को सौंप देना। द्विज शोषक श्रेणी उत्पत्ति के साधनों और भूमि की मालिक थी। यह श्रेणी शस्त्रों की शक्ति से भूमि पर अपना अधिकार रखती थी। यह श्रेणी श्रम करने वालों को विश्वास के बंधन और शास्त्र के दबाव से अपने आधीन रख कर, उनकी मेहनत का फल खाकर ब्रह्म-ज्ञान का सुख भोगती थी। यही था ब्रह्म-ज्ञान का मूल मन्त्र। द्विज लोग इस ब्रह्म-ज्ञान का अधिकार अपनी श्रेणी के अतिरिक्त किसी दूसरे को देने के लिये तैयार न थे। इस व्यवस्था में श्रम जबरदस्ती कराया जाता था और श्रम का अपमान था। मान सम्पत्ति और भोग के अधिकार का था। वही मंत्र, (ईश्वर की प्रेरणा के नाम से मेहनत करने वाले वर्ग पर शासन रखने का मंत्र) आप फिर लागू करना चाहते हैं परन्तु अब श्रम करने वाला वर्ग सचेत हो रहा है। वह अपनी नैतिकता और न्याय की स्थापना करना चाहता है। समाज का पालन सम्पत्ति नहीं, श्रम करता है। श्रम ही सम्पत्ति को भी उत्पन्न करता है। श्रमिक वर्ग समाज से सम्पत्ति का शासन हटा कर। श्रम का शासन और श्रम की मान्यता स्थापित करना चाहता है।”

सर्वोदयीजी दुहाई देने के भाव में दोनों हाथ फैलाकर और सब लोगों की ओर समर्थन की प्रार्थना से देखकर बोले—“सम्पत्ति के लिये लोभ और और संघर्ष फैलाकर सम्पत्ति की दासता का प्रचार तो आप भौतिकवादी लोग ही करते हैं। बापू ने तो सम्पत्ति को ठोकर मारने का ही आदर्श पेश किया

था । आपका समाजवाद 'आर्थिक संघर्ष' और 'श्रेणी संघर्ष' को ही सब कुछ समझता है । कौन बढ़ाता है सम्पत्ति की दासता को ?”

“सम्पत्ति को ठोकर मारने का प्रचार केवल प्रवचना है” मार्क्सवादी ने गम्भीर और ऊँचे स्वर में विरोध किया, “सम्पत्ति का अर्थ है, जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ, आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने के साधन और अवसर । सम्पत्ति का रूप चाहे जो हो, उसके बिना व्यक्ति और समाज किसी का भी जीवन सम्भव नहीं है । जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को आप चाहे स्वयं पैदा करें, चाहे माँग लें या डाका मार कर लायें या कोई उन्हें आपके चरणों में भेंट कर दे, जीवन उन्हीं से चलता है । जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक साधनों को पाने की चेष्टा व्यक्ति और समाज के जीवन को स्वाभाविक और आवश्यक गति है । जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को पाने में जितनी कठिनाई होगी, उतना ही विकट संघर्ष उनके लिये होगा ।

“इस संघर्ष का कारण पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न होगयी विषमता है । समाज की वर्तमान अवस्था में आर्थिक संघर्ष को रोकने के प्रयत्न का प्रयोजन है कि समाज में सम्पत्ति पर अधिकार की, और समाज में होने वाली पैदावार के बंटवारे की जैसी अवस्था है, उसमें परिवर्तन न हो । आपको मानना ही पड़ेगा कि आज समाज में आदर और अधिकार का अवसर सब के लिये समान नहीं है । जिसके हाथ में सम्पत्ति के स्वामित्व का जितना अवसर और अधिकार है, उतनी ही उसकी सामर्थ्य और शक्ति है । समाज में समता और समान अवसर, सहृदयता और हृदय-परिवर्तन के उपदेश से नहीं, जीवन के साधनों पर सब लोगों का अधिकार, समान रूप से होने से ही हो सकता है । समाज में विषमता और असमान अवसर का कारण मनुष्यों के दुर्गुण नहीं, समाज की परिस्थितियाँ ही हैं । परिस्थितियों और व्यवस्था के बदलने से ही मनुष्यों के सदगुण पनप सकेंगे । सामाजिक न्याय के लिये आवश्यक है कि जिन लोगों ने समाज द्वारा उत्पन्न की गयी सम्पत्ति में से दूसरों का भाग छीन कर अपने अधिकार में कर लिया है, उनके अन्याय को समाज की सामूहिक शक्ति द्वारा दूर करके, समाज के पैदावार के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का या पैदावार के लिये श्रम करने वालों का समान अधिकार स्वीकार किया जाये.....”

सर्वोदयीजी ने व्याकुलता से चेतावनी में उँगली खड़ी कर सावधान किया “यह आप क्या कह रहे हैं ? न्याय और समता के नाम पर आप सामूहिक डाकेजनी और हिंसा का प्रचार कर रहे हैं ! सम्पत्ति के स्वामियों और संरक्षकों

से सम्पत्ति को सामूहिक शक्ति से छीनने का अर्थ डाकेजनी और हिंसा नहीं तो क्या है ?”

“चोर से चोरी का माल बरामद कर लेना क्या चोरी और हिंसा है ?” कामरेड ने मुक्का उठा कर फर्श से बालिस्त भर उचकते हुए पूछा ।

प्रायः सभी लोगों के चेहरों पर विस्मय का भाव आ गया । शुद्धसाहित्यिक जी इस विवाद को अपनी ही आलोचना समझ कर अब तक चुप बैठे थे परन्तु अब पूछ बैठे—“चोर से चोरी का माल बरामद करने का मतलब ?”

कामरेड से पहले बोल उठे इतिहासज्ञ “सुनिये, बड़े भारी फ्रेंच विद्वान ‘प्राधों’ का कहना है—‘सम्पूर्ण सम्पत्ति चोरी है ।’ समाज में शान्ति चाहने वाले हमारे पूर्वज ऋषियों ने भी सम्पत्ति संचय करना पाप बताया था । मतलब यही था कि सम्पत्ति को समाज सामूहिक रूप से उत्पन्न करता है, उसे व्यक्तिगत रूप से दबा लेना चोरी है... ..”

उनके मुँह की बात लेकर वैज्ञानिक ने कहा—“समाज में पैदावार तो श्रम में ही होती है । यदि सब लोगों को श्रम करने का समान अवसर हो और सब लोग अपने श्रम का फल खर्च कर सकें, तो किसी के पास दूसरों की अपेक्षा लाखों गुणा अधिक धन-सम्पत्ति जमा हो जाने का कोई कारण नहीं हो सकता । यदि किसी के पास दूसरों की अपेक्षा हजार-लाख गुना धन है, कोई हजारों आदमियों की श्रम-शक्ति खरीद सकता है, उन्हें अपने काम के लिये नौकर रख सकता है, तो यह सम्पत्ति उसके पास निश्चय ही, दूसरों का श्रम हथिया लेने के कारण ही जमा हो सकी है ।”

वैज्ञानिक की बात अस्वीकार करने के लिये भद्रपुरुष मिर हिलाकर बोले—“पैदावार या सम्पत्ति को श्रम ही नहीं पैदा करता । किसी मिल में दस हजार मजदूर काम कर सकें, मिल में अपनी मेहनत लगा सकें, इसके लिये पहले निल का या मिल बनाने लायक सम्पत्ति का होना जरूरी है । आप पूंजी के महत्व को कम नहीं कर सकते ?”

इतिहासज्ञ ने अस्वीकृति की मुद्रा में कहा—“सम्पत्ति का महत्व तो है परन्तु सम्पत्ति है क्या ? सम्पत्ति केवल श्रम का पदार्थों के रूप में जमा किया गया रूप या फल ही तो है । कपास पैदा करने में और कपड़ा बुनने में जो श्रम होता है उसी के कारण कपड़े का मूल्य है, और कपड़ा सम्पत्ति बन जाता है । सम्पत्ति को सुविधा से जमा करने के लिये आप रुपयों में बदल लेते हैं कि अवसर पर इस रुपये में दूसरे आदमी के श्रम से पैदा हुआ पदार्थ या उसकी

श्रम-शक्ति खरीद सकें ।

“एक जमाने में मिलें और कारखाने नहीं थे । आदमी की श्रम करने की शक्ति उस समय भी थी । उसी श्रम-शक्ति का फल संवय होते-होते कारखाने और मिलें बन सकी हैं या पैदावार के साधनों के रूप में सम्पत्ति जमा हो सकी है । आज सम्पत्ति स्वयं पैदावार का बड़ा भारी साधन बन गयी है और सम्पत्ति के मालिक इस शक्ति से, समाज की पैदावार की व्यवस्था पर शासन कर रहे हैं । उन्होंने सम्पत्ति के रूप में पैदावार के सम्पूर्ण साधनों पर अधिकार कर लिया है । एक समय शोषक शासक पैदावार के साधनों (मुख्यतः भूमि या जंगलों) को शस्त्र-शक्ति से अपने वश में रख कर, मेहनत करने वाली श्रेणी के श्रम का फल भोगते थे । आज आर्थिक और औद्योगिक विकास की अवस्था में, सम्पत्ति की मालिक श्रेणी पैदावार के नये उत्पन्न हो गये साधनों, यंत्र आदि पर अधिकार करके समाज की आर्थिक व्यवस्था को अपने वश में किये है । कोई भी साधनहीन व्यक्ति, जो अपने श्रम का एक भाग मुनाफे के रूप में पूँजीपति को न दे, पैदावार करने का अवसर नहीं पा सकता । पूँजीवादी व्यवस्था में शासन और सरकार का अधिकार पूँजीपति श्रेणी के हाथ में होने के कारण, पूँजीपति श्रेणी सीनाजोरी से अपना मुनाफा कहकर, श्रमिक श्रेणी के श्रम के फल में से चोरी करती है ।

“समाज द्वारा की गयी सामूहिक पैदावार मुनाफे के नाम से पूँजीपति श्रेणी के हाथ में जमा होते जाने का परिणाम यह है कि पूँजीपति श्रेणी पैदावार के साधनों और आर्थिक व्यवस्था पर अपना शासन बढ़ाये जा रही है । समाज के श्रम की यह उनकी चोरी मुनाफे के रूप में बढ़ती ही जा रही है और श्रम करने वाले लोग श्रेणी रूप से दिन-दिन पराधीन और निस्सहाय होते जा रहे हैं ।

वैज्ञानिक की इन लम्बी वक्तृता के उत्तर में सर्वोदयीजी चेहरे पर करुणा और यातना का निरीह भाव लाकर बोले—“मुनाफे की आप चोरी कैसे कह सकते हैं ? मालिक के मुनाफे को चोरी बताना आपकी ईर्ष्या और हिंसा-वृत्ति का परिचायक है । आप को पूँजीपति श्रेणी से द्रोह है इसलिये आप उनके श्रम के फल को चोरी कह कर अपना द्वेष प्रकट करते हैं । जैसे और धन्धों के लोग वकील, डाक्टर और कलाकार अपने विशेष श्रम का फल पाते हैं, उसी प्रकार पूँजीपति भी अपने श्रम का फल पाता है । आप यह नहीं देखते कि पूँजीपति लोग समाज के लिये आवश्यक पदार्थ पैदा करने के लिए अपनी पूँजी जोखिम

में लगाते हैं। यह जोखिम सहने का फल क्या उसे कुछ नहीं मिलना चाहिये ? बापू ने किसान-मजदूर जनता के प्रति दया और सहानुभूति का उपदेश दिया है परन्तु मालिक के अधिकारों की रक्षा को भी न्याय बताया है। अन्याय किसी के भी प्रति हो, अन्याय ही है।”

इतिहासज्ञ ने सर्वोदयी जी की बात पर खिन्नता प्रकट करने के लिये जोर से सिर हिलाकर विरोध किया—“मालिक के अधिकार की बात एक ही रही। अभी हाल तक जमींदार-मालिक को बेगार लेने का अधिकार था। कुछ समय पहिले तक ठाकुर लोग अपनी प्रजा में कोई विवाह होने पर नववधू पर पहली रात अपना अधिकार समझते थे। दक्षिण के धर्मपरायण लोगों में नववधू पर पहली रात नम्बूदरी ब्राह्मण का अधिकार होता था। मालिक गुलामों के प्राणों पर अपना अधिकार समझते थे। औरंगजेब हिन्दुओं से जज़िया × लेना अपना अधिकार समझता था। इन सब अधिकारों की रक्षा कीजियेगा ? जिसके हाथ जितनी शक्ति, उसके उतने अधिकार। जिसके हाथ शक्ति उसी उसी के साथ भगवान ! जिस समय समाज में पैदावार के साधनों पर शस्त्र-मे नियंत्रण रखा जा सकता था, मौ या हजार आदमी लेकर हथियारों के जोर से भूमि छीन लेने वाले लोगों के ही सब अधिकार थे। निज़ाम के पूर्वज हैदरअली, टीपू सुल्तान और महाराजा रणजीतसिंह इसी अधिकार से महाराज बन गये।

महाराजा रणजीतसिंह ने मुसलमान शामक से लाहौर का राज छीनने के साथ ही उससे कोहनूर हीरा भी छीन लिया था। अंग्रेज राजदूत ने जब रणजीतसिंह से इस हीरे का दाम पूछा तो रणजीतसिंह ने उत्तर दिया—इस हीरे का दाम है ‘दस जूते’। जो दस जूते मार सकता है, इस हीरे को छीन सकता है। आज यह तिकता मान्य न होगी। आज कहा जायगा, जो पाँच करोड़ रुपया दे सकता है, हीरे को ले सकता है। यह है शस्त्रों की अपेक्षा पूंजी की मान्यता परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अब भी शस्त्रशक्ति, एटम बम की ही मान्यता है। मनुष्य अभी तक व्यक्तिगत रूप से, समाजवादी रूस में ही सामाजिक रूप से—सम्य हो सका है; परन्तु अब अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता का भी विकास हो रहा है।

उस समय ऐसे लोगों को राजा-महाराजा कहकर सम्पूर्ण प्रजा और साधु-

× हिन्दू बने रहने का कर।

सन्त उनके सामने सिर झुकाते थे। उन लुटेरे डाकुओं को ही भगवान का प्रतिनिधि कह दिया जाता था। राजा या ठाकुर अपनी प्रजा की श्रम की कमाई का जितना भाग चाहता था, ले लेता था। मालिक लोग अपने दासों को कोड़े मार कर, मौत का भय दिखा कर जो सेवा चाहते थे, करा लेते थे। समाज में पैदावार के साधनों का विकास हो जाने पर, पैदावार की व्यवस्था में पूँजी की प्रधानता हो जाने पर, पैदावार के साधनों को पूँजी से वश में रखने वाली श्रेणी, जनता के श्रम को मुनाफे के रूप में छीन लेती है। साधन-हीनों को आर्थिक व्यवस्था से मजदूर रखकर उनकी पीठ पर चढ़ा जा सकता है, उनसे अपना पाखाना उठवाया जा सकता है, उनकी बहू-बेटियों को अपने विनोद के लिये कोठों पर बैठाया जा सकता है। यदि वे ऐसा न करें तो भूखों मरें।

आपको अहंकार है कि आप मर जायेंगे पर ऐसा काम नहीं करेंगे। परन्तु साधनहीनों को भूखा रखकर आप उनसे सब कुछ करवा सकते हैं, करवाते ही हैं। एक दो आदमी अपने अहंकार या अपनी आन पर मर कर दिखा सकते हैं परन्तु पीढ़ी-दर-पीढ़ी कोई जाति अड़ नहीं सकती। उमे अपना जीवन परिस्थितियों के अनुकूल ढालना ही पड़ेगा। पूँजीपति श्रेणी शौक से व्यभिचार करती है, साधनहीन श्रेणी पेट के लिये व्यभिचार सहती है। पूँजी-पति श्रेणी की इस शक्ति का रहस्य यही है कि जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करने के साधन उसके हाथ में हैं। जो लोग अपने श्रम का भाग मुनाफ़े के कर के रूप में उन्हें नहीं देंगे, उन लोगों को मालिक श्रेणी पेट भरने के लिये श्रम का अवसर नहीं देगी। यह है 'पूँजीवादी-प्रजातंत्र' में मेहनत करने वाली मजदूर श्रेणी और सफ़ेद पोश मध्यम श्रेणी पर पूँजी का निरंकुश शासन ! मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही पूँजीवादी शासन की कानूनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता है। इसका अर्थ है, जो चाहे मुनाफे की कानूनी-चोरी से, पैदावार के साधनों पर अधिकार करके, दूसरों के श्रम का फल चूसता जाय.....”

बहुत देर से चुप जिज्ञासु प्रश्न कर बैठे -- “कानूनी-चोरी कैसे ?”

इतिहासज्ञ ने और भी उग्र स्वर में उत्तर दिया--“जैसे किसी जमाने में औरंगजेब का हिन्दुओं से जजिया लेना और दास-स्वामियों का अपने दासों की सुन्दर पुत्रियों को अपने बिस्तर में डाल लेना कानूनी था, वैसे ही दूसरे के श्रम का फल हथिया लेना आज भी कानूनी है। क्योंकि आज समाज का

शासन और समाज की शस्त्र-शक्ति पूँजीपतियों के हाथ में है। शासक श्रेणी शस्त्र-शक्ति के बल पर अपने स्वार्थों को कानून का नाम दे देती है। मुनिये, कुछ बरस पहले तक शर्त-बन्द-मजदूरी (Indentured Labour) * कानूनी थी, आज नहीं रही। कानून कोई शाश्वत वस्तु नहीं है। जिस श्रेणी के हाथ शक्ति होगी, वह अपने हित के अनुसार कानून बना लेगी।”

इतिहासज्ञ का प्रभाव जमता देखकर सर्वोदयी जी अपनी पीठ पर तन कर टोक बैठे—“कानून से बड़ी चीज है नैतिकता !”

“शोषक भी नैतिकता का दम्भ करता है ?” वैज्ञानिक ने चुनौती दी, “किसी का धन चुराना, किसी से पैसा ठग लेना अनैतिक है या नहीं ? धन या पैसा बनता है श्रम से। श्रम ही वास्तव में धन है। पैसा बनाने की शक्ति जब तक मजदूर के शरीर में रहती है, उसका मुनाफे के रूप में चुरा लेना या ठग लेना नैतिकता है, कानूनी व्यापार है। जब वह शक्ति पैसे का रूप लेकर पूँजीपति की जेब या तिजोरी में चली जाये तो उसका चुरा लेना या ठग लेना अनैतिक है, चोरी है, डाका है। यह है पूँजीवादी कानून जो श्रम को अपमानित करता है, श्रम को लूट की चीज समझता है और पूँजी को पवित्र बना लेता है। क्योंकि पूँजीपति या मालिक श्रम नहीं करता इसलिये अपने शासन में वह सदा श्रम-शक्ति को अधिकारहीन और निर्बल बनाये रखता है, श्रम का अपमान करता है, श्रम न करने को आदर का लक्षण बना देता है। शोषक श्रेणी के प्रतिनिधि ऋषि यह उपदेश तो दे गये कि —‘मागृधः कस्यस्विद्धनम्’ १ परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि ‘मागृधः कस्यचिदश्रमम्’ २ क्योंकि श्रम वे करते नहीं थे। कोई उनका श्रम क्या लेता ? इससे भी अधिक चतुरता उन्होंने यह की कि जनता को समझाया—कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन।” अर्थात् तुम मेहनत करते जाओ, इस बात की चिन्ता न करो कि

* भारत और दूसरे उपनिवेशों से मजदूरों को शर्तनामा लिखा कर निश्चित वर्षों के लिये निश्चित मजदूरी पर भर्ती किया जाता था और उन्हें अपने देश न लौटने देकर, उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार करके, मनमानी मेहनत कराई जाती थी। इस अन्याय के विरुद्ध संसार-व्यापी घोर आन्दोलन होने के बाद यह प्रथा अब कानूनन बन्द हो गयी है।

१ “किसी का धन लेने की इच्छा मत करो” ईषोपनिषद

२ “किसी का श्रम लेने की इच्छा मत करो !”

फल मिलता है या नहीं। कारण यह कि कर्म का फल तो वे स्वयं खा लेना चाहते थे। श्रम के राज में, समाजवादी शासन में, पूँजी को दूसरे का श्रम मुनाफे के रूप में हथिया लेने का अवसर नहीं रहेगा। जैसे पूँजीवादी शासन में पूँजी की चोरी अपराध है वैसे ही रूस के समाजवादी शासन में दूसरे के श्रम की चोरी अपराध है। यह है श्रम की समाजवादी नैतिकता। दूसरी ओर है मुनाफे को न्याय मानने वाली, आपकी पूँजीवादी सरकार की नैतिकता जो मजदूर श्रेणी से, उनकी एक-मात्र शक्ति हड़ताल द्वारा, अपने श्रम की लज्जा-जनक लूट का विरोध करने का भी अवसर छीन लेती है। इस सरकार के लिये पूँजीमति का मुनाफा, पूँजी की बढ़ती ही राष्ट्रीय उद्देश्य है.....।”

जिज्ञासु ने फिर टोक कर प्रश्न किया—“राष्ट्र के औद्योगीकरण के लिये पूँजी की आवश्यकता है। पूँजी मुनाफे से ही पैदा होती है तो आप मुनाफे को अनैतिक और राष्ट्र-विरोधी कैसे कह सकते हैं?”

जिज्ञासु के गम्भीर प्रश्न का उत्तर देने के लिये मार्क्सवादी अपने दांयें हाथ से बायें हाथ की उँगली थाम कर, मानों प्रश्न का उत्तर कई भागों में देना चाहते हैं, गम्भीरता में बोले—“देखिये, पूँजी वास्तव में बचा कर रखी गयी ऐसी पैदावार है जिसे पैदावार के साधन का रूप दे दिया गया है या पैदावार में सहायता देने का साधन बना लिया गया है। यह प्रत्यक्ष मत्त्य है कि यंत्रों के इस युग में पैदावार सामूहिक रूप से और साझे में की जाती है इसलिये समाज द्वारा की गयी पैदावार को यदि उत्पादक साधनों और उत्पादक पूँजी का रूप दिया जाता है तो वह समाज की ही वस्तु होनी चाहिये, एक व्यक्ति की नहीं।”

मार्क्सवादी ने दूसरी उँगली को छुआ—“पैदावार की शक्ति पर समाज का अधिकार होने से पैदावार समाज-हित के दृष्टिकोण से होगी और सामाजिक पैदावार का बड़ा भाग समाज के उपयोग से छीन कर अलग नहीं कर दिया जायगा। इससे समाज की समृद्धि बढ़ेगी।”

मार्क्सवादी ने तीसरी उँगली को छुआ—“जब पैदावार समाज के नियंत्रण में सामाजिक उपयोग के लिये होती है, तब पैदावार की शक्ति को समाज के लिये उपयोगी पदार्थों के उत्पादन में लगा कर, पैदावार को निस्सीम रूप से

१ रूस के समाजवादी विधान के अनुसार मुनाफा या दूसरे के श्रम का भाग लेने वाले व्यक्ति नागरिक अधिकारों से वंचित समझे जाते हैं।

बढ़ाया जा सकता है। उस समय गांधीवाद का आदर्श 'अधिकांश को तो गरीब ही रहना है' हमारा आदर्श नहीं होगा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिड़ला, टाटा और सिंहानिया की भाँति आराम, अवकाश और सुविधा चाहता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि ज़ारशाही—पूँजीवादी रूस में मजदूरों की दुर्दशा भारत के मजदूरों जैसी ही थी, परन्तु समाजवादी व्यवस्था कायम हो जाने से, पैदावार की शक्ति को व्यक्तिगत मुनाफे के लिये नहीं बल्कि सामाजिक नियंत्रण में, सामाजिक हित के लिये बढ़ाने से, आज रूस का मजदूर पहले की अपेक्षा पचास गुना अधिक समृद्ध है। आज रूस का मजदूर संसार के सब से धनी देश अमेरिका के मजदूर से भी अधिक सुखी है।”

मार्क्सवादी दूसरे हाथ की पहली उँगली थाम कर बोले—“पूँजी के व्यक्तिगत अधिकार में होने से, मुनाफे के रूप में समाज की पैदावार का बड़ा भाग समाज से छिन जाने पर, पैदावार की शक्ति तो बढ़ेगी परन्तु समाज की खपत की शक्ति घट जायगी। संसार के सभी उन्नत पूँजीवादी देश इस संकट में फंसे हुये हैं” दूसरी उँगली छूकर वे बोले, “यह क्रम जारी रहने से और पैदावार का प्रयोजन व्यक्तिगत मुनाफा ही होने से, पैदावार को भी घटाना पड़ेगा; परिणाम में समाज में बेकारी होगी जैसा कि सभी पूँजीवादी देशों में हुआ है। पूँजीपति श्रेणी सदा ही समाज में कुछ न कुछ बेकारी को रखना चाहती है क्योंकि मजदूरों को बेकारी द्वारा भूख का भय दिखा कर मजदूरी का दर नीचा रखा जा सकता है।”

अगली उँगली छूकर वह बोले—“जब पैदावार व्यक्तिगत मुनाफे के लिये की जायगी, तो पूँजीपति अपने सौदे का दाम ऊँचा रखने के लिये समाज की आवश्यकता से कम पैदावार करेगा, क्योंकि महंगाई रहने पर ही उसे अधिक मुनाफा होता है।”

उन्होंने अगली उँगली छुई—“और जब पूँजीपति श्रेणी में आपसी होड़ के कारण और किसी सौदे में मुनाफे की गुंजाइश कम रह जायगी, तो पूँजीपति असली माल में मिलावट करेगा, नकली माल बनायेगा। आज हमारे देश में मुनाफा कमाने की होड़ बहुत अधिक है और समाज में खरीद सकने की सामर्थ्य बिल्कुल कम हो जाने से बाजार घट गया है। इस कारण जिस चीज में देखिये, धोखाबाजी पायेंगे.....”

मार्क्सवादी, शायद गले में कोई अवरोध आ जाने के कारण, जरा अटके थे कि सर्वोदयीजी फिर अत्यन्त करुण स्वर में बोल उठे—“आप अपनी हिंसा-वृत्ति

के कारण सब पूँजीपतियों को चोर ही समझ लेना चाहते हैं, यह आपके मन की हिंसा है। आप यह भूल जाते हैं कि देश की इतनी बड़ी आर्थिक व्यवस्था को पूँजीपति श्रेणी ने ही अपने-अपने परिश्रम और सुख-त्याग से धन की बचत कर बनाया है। यदि आप इन व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण करना ही चाहते हैं तो आपको चाहिये कि पूँजीपति श्रेणी को समुचित मुआविजा दें। आपकी सरकार जमींदारी उन्मूलन का कार्य-क्रम लेकर चली परन्तु जमींदारों के मुआविजे के लिये निश्चित एक सौ अस्सी करोड़ रुपये में से आपका किसान, दस गुना लगान की अदायगी की अन्तिम तारीखें तीन बार बदलने पर भी, अभी केवल छब्बीस करोड़ ही दे सका है। * शेप एक सौ चौवन करोड़ सरकार पर जमींदारों के कर्जों के रूप में रहेगा। यदि उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा तो सरकार उसका मुआविजा कहाँ से देगी ? देश की गरीब प्रजा क्या इतना मुआविजा भर सकेगी ?”

सर्वोदयी जी की इस दुहाई के उत्तर में कामरेड ने कहकहा लगा दिया और बोले—“पूँजीपति श्रेणी और गाँधी जी जैसे पूँजीवाद के समर्थकों को गरीब प्रजा की अवस्था पर आँसू बहाते देखकर, हमें ऐसा जान पड़ता है कि पिंजरे में बन्द चिड़ियाँ, अपनी मुक्ति के लिये पिंजरा तोड़ने की कोशिश कर रही हैं, यह देखकर चिड़ीमार आँखों में आँसू भर कर उन्हें समझा रहा है कि तुम मूर्खता कर रही हो। यदि यह पिंजरा टूट जायगा तो तुम आकाश में उड़ने लगोगी और राह भटक जाओगी, बाज और बिल्लियाँ तुम्हें खा जायेंगे। ठीक ऐसे ही आपको और आपकी सरकार को प्रजा पर सरकारी कर्ज बढ़ने की चिन्ता है। जमींदारों को मुआविजा देना कांग्रेस के एलान में कभी शामिल न था और न उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण के लिये जनता ने कभी मुआविजे की बात सोची या मानी थी। क्या हम मुआविजा इसलिये दें कि अब तक हमें खूब लूटा गया है ! १९३१ की कराची कांग्रेस में कांग्रेस ने जमींदारी उन्मूलन और देश के उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव पास किया था। उस समय मुआविजे का कोई चर्चा नहीं था। अब सरकारी व्यवस्था पूँजीपति श्रेणी के हाथ में है। उनकी अपनी सरकार चाहे जैसे प्रजा की खाल खींच ले। राष्ट्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति और पैदावार के साधन, राष्ट्र

* जुलाई १९५० के पहले सप्ताह तक। अदायगी की तीसरी बार निश्चित की गई अन्तिम तारीख ३० जून १९५० थी।

की मेहनत करने वाली श्रेणी की मेहनत का फल है। उस पर कुछ गिने-चुने पूंजीपतियों का अधिकार होना अन्याय और अनैतिक है। समस्या है, मेहनत करने वालों की, मेहनत का फल चुरा लेने वालों से चोरी का माल बरामद करने की। इसका साधन है, समाज की सामूहिक शक्ति से चोरों का नियंत्रण। चोरों को मुआविजा देने की सलाह केवल चोरों के दलाल, गठकतरे ही दे सकते हैं।”

विरोध में सिर हिलाकर सर्वोदयी जी फिर बोले — “समूह की इच्छा की दुहाई देकर आप व्यक्ति पर अन्याय नहीं कर सकते। यदि आप व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन लेंगे तो इससे समाज का भी नाश हो जायेगा। जिस समाज में व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं, वह समाज पराधीन ही समझा जायगा। व्यक्ति ही समाज को बनाते हैं।”

कामरेड सर्वोदयी जी की बातों से झल्लाकर बोले— “जान पड़ता है, ईश्वर की प्रेरणा से आपका तर्क सदा गलत बात प्रमाणित करने के लिये ही चलता है। आपने यह तो कह दिया कि व्यक्ति ही समाज को बनाता है परन्तु क्या आप समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना कर सकते हैं? आप जैसे सैकड़ों व्यक्ति न हों तो समाज तो रहेगा ही। यदि पूंजीपति की मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाज का हनन करने से ही रह सकती है, तो कोई नैतिकता उसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हो सकती। कितना बड़ा अन्धेरे है कि यदि एक आदमी किसी को धमकाकर उसकी जेब से चार पैसे छीन ले तो आप उसे जेल भेज देते हैं, परन्तु पूंजीपति एक हजार मजदूरों को तड़पाने का भय दिखाकर, महीनों और वर्षों तक उनकी मेहनत का फल (पैसा) बटोरता रहे, तो अपराध नहीं। किसी का गला घोट कर यदि कोई आदमी एक रुपया छीन ले तो फांसी पाता है परन्तु आटे में इमली का बीज और पत्थर मिला कर, हजारों की जान लेकर मुनाफा कमाने वालों को, तेल में भड़भड़ा मिलाकर लोगों को महामारी के पेट में ढकेलने वाले मुनाफाखोरों के लिये, आपके पास कोई दण्ड नहीं ऐसे कितने आदमियों को फांसी चढ़ाया है आपने?”

“यह तो व्यक्तिगत अपराध है.....” सर्वोदयी जी कहना चाहते थे परन्तु वैज्ञानिक टोक बैठे—

“व्यक्तिगत अपराध है, परन्तु इस अपराध का आधार मुनाफा कमाने का उद्देश्य और मुनाफा कमाने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है, समाज के विरोध में

व्यक्ति का स्वार्थ है। इसी सिद्धान्त पर चल कर सरकारी नौकर घूस खाता है। चोरबाजारी और सौदे में धांधली करने वाले, मुनाफे के लिये अनुचित अवसर चाहने वाले ही हजारों रुपये की रिश्वतें देते हैं। सरकारी अफसर इस रिश्वत को पूँजीपति के मुनाफे में अपना नगण्यमात्र सा भाग समझता है। जब समाज की शासक शक्ति मुनाफे के अधिकार की स्वतंत्रता भोग रही है और उनके बड़े-बड़े कारिन्दे उनके अधिकार की रक्षा करने के इनाम में लाखों रुपये जेब में डाल रहे हैं, तो मामूली सरकारी नौकर क्या करें? वह पांच-दस रुपया ही रिश्वत ले लेते हैं और इसे अपना मुनाफा समझते हैं। राज्य ही तो मुनाफा कमाने के सिद्धान्त का ठहरा। तनखाह तो हुई केवल मजदूरी, रिश्वत हो गई मुनाफा !”

सर्वोदयी जी फिर बोले—“आप व्यक्तियों के लोभ को समाज का अपराध बना देना चाहते हैं। यह नहीं सोचते कि व्यक्ति की आत्मिक उन्नति के बिना समाज सुधर नहीं सकता। पहली बात है, व्यक्तिगत आत्मिक उन्नति !”

सर्वोदयी जी के वही बात बार-बार दोहराने से वैज्ञानिक ने माथे पर हाथ मार कर उत्तर दिया—“सुनिये, हम तो पहले अपने शरीर की रक्षा चाहते हैं। आप शरीर-रक्षा के अवसर के बिना ही आत्मिक उन्नति कर लेना चाहते हैं। बेहतर हो आप ऐसी जगह जाइये, जहाँ शरीर-हीन आत्मायें बसती हों, यानी मरघट में.....”

बात समाप्त करते ही वैज्ञानिक उठ खड़े हुये और उनकी देखा-देखी थके हुये दूसरे लोग भी।



पूँजीवाद की भोग्य महिला और समाजवाद की आत्म-निर्भर नारी !

क्लब में बात ढीले-ढाले ढंग से चल रही थी, कभी एक विषय पर और कभी दूसरे पर। शुद्धसाहित्यिक जी अंग्रेजी के एक 'चित्रमय' साप्ताहिक के पन्ने पलट रहे थे। घड़ियों का विज्ञापन देखते तो ब्योरा पढ़ने लगते थे।

भद्रपुरुष ने चुटकी ली—“अरे भाई शुद्धसाहित्यिक जी, कोई घड़ी पसन्द नहीं आयी ?”

“घड़ियाँ तो बीसियों पसन्द हैं” शुद्धसाहित्यिक ने उत्तर दिया, “परन्तु उनके दाम पसन्द नहीं” पत्र में एक घड़ी का चित्र दिखाते हुए वे बोले, “यह देखिये न, दाम ४७५)। एक भले आदमी का साल भर का गुजारा।”

“तो कोई मामूली सी ले लीजिये—तीस-चालीस की” भद्र पुरुष ने सुमति दी।

“घड़ी मामूली लेने से फायदा ?” मौजी ने इस सुमति का विरोध किया, “समय ही देखना हो तो डाकखाने और म्युनिसिपैल्टी के घण्टाघरों से देखा जा सकता है। शहर भर में घड़ियाल गरजते रहते हैं। मन का संतोष भी तो कोई चीज है। क्यों शुद्ध साहित्यिक जी ? दिलकी भी तो बात है।” “जेब खाली है तो क्या ?”

“तो दिल को ही जेब में डाल लो मित्र !” इतिहासज्ञ चुटकी से मुस्करा दिये और फिर बोले—“४७५) मोल केवल समय जान सकने का नहीं है। घड़ी मर्दों का गहना भी तो है। बढ़िया फाउन्टेनपेन, बढ़िया घड़ी, एकाध अँगूठी, यही मर्दों के गहने हैं। गहनों की कीमत का क्या कहना ? यह तो शौक और प्रतिष्ठा की कीमत है। हमारे बुजुर्ग आजकल के राजा-महाराजाओं को तरह कण्ठे, कड़े और मोतियों की बालियाँ पहना करते थे। हम लोग

केवल घड़ी, कलम और अँगूठी से ही अरमान पूरे कर लेते हैं।”

एक ओर दीवार के साथ बैठी श्रीमती जी बोल उठी—“ठीक तो कह रहे हैं इतिहासज्ञ जी, मर्दों को भी तो गहनों का चाव होता है, लेकिन गहनो के किये बदनाम होती हैं केवल स्त्रियाँ बेचारी !”

“गहना समृद्धि का चिन्ह है और समाज में समृद्धि का सम्मान है। चाव गहनों का मर्दों को भी जरूर होता है” वैज्ञानिक बोले, “लेकिन मर्द गहनो के लिये औरतों की तरह नाक-कान तो नहीं फाड़ लेते ? कारण शायद यह है कि हमारे समाज में औरत की स्थिति पुरुष को रिझा सकने की शक्ति पर ही निर्भर करती है। वह बेचारी पुरुष को रिझाने के लिये अपने अस्तित्व तक को निछावर कर देना चाहती है। क्योंकि जिम नारी पर कोई पुरुष न रोज़े, उस बेचारी का अस्तित्व ही क्या ?”)

‘वाह, स्त्रियाँ कहाँ पुरुषों को रिझाती हैं ?’ श्रीमती जी ने प्रकट नाराजी से विरोध किया, “पुरुष ही तो स्त्रियों के पीछे भागते हैं। वे बेचारी तो घरों में बन्द रहती हैं।”

बहुत जबरदस्त बात पकड़ पाने के उत्साह में दोनों हाथ उठाकर वैज्ञानिक ने कहा—“बिल्कुल ठीक कहा आपने। आपकी दोनों बातें सत्य हैं। हमारे समाज में पुरुष स्त्रियों के पीछे भागते हैं क्योंकि उन्हें स्त्री के पीछे भाग सकने का साहस और अवसर है। स्त्रियाँ क्योंकि घरों में बन्द रखी जाती हैं, इसलिये वे जो कुछ चाहती हैं, पुरुष को रिझा कर उसकी प्रसन्नता से ही पा सकती हैं। रिझा सकने योग्य बनने के लिये वे अपने नाक-कान कटाती—क्षमा कीजिये, नाक-कान छिदाती हैं, हाथ-पाँव और मुँह पर रंग पोतती हैं। सुनिये, वे कुछ और जोर से बोले, “शादी के लिये लड़के-लड़की के चुनाव के समय लड़की का रूप देखा जाता है और लड़के की आमदनी और जायदाद देखी जाती है, क्या मतलब है इसका ?”

श्रीमती जी ने फिर विरोध किया—“वाह, बहुत मालूम है आपको ! आजकल तो सब पूछते हैं कि लड़की कितना पढ़ी है ?”

वैज्ञानिक फिर बोले—“स्त्रियों की पढ़ाई उनकी रिझावट जानने के लिये ही पूछी जाती है। भाभी जी, आप जानती हैं न बोलने वाली गुड़िया की कीमत अधिक होती है !”

“स्त्रियों को आप गुड़िया-खिलौना समझते हैं ?” महिला ने अधिक नाराज होकर फटकार सी बतायी।

सर्वोदयीजी महिला की सहायता के लिये गर्दन ऊँची कर बोले —“यह पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव है कि आप नारी को केवल मन-बहलाव की वस्तु समझते हैं।”

“पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव ?” इतिहासज्ञ ने आँखें फैलाकर विस्मय प्रकट किया और बोले, “पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव तो यह है कि दो महिलायें आप के साथ बैठकर बात कर रही हैं। पूर्वी संस्कृति के अनुसार तो महिलाओं का काम घर के भीतर बैठ कर तरकारी के लिये मसाला पीसना होना चाहिए था या बहुत होता तो वे चिक की आड़ में बैठ कर हमारी-आपकी बातें सुन लेतीं।”

राष्ट्रीयजी बोल उठे—“स्त्रियों को घर के भीतर बन्द रखने की संस्कृति मुस्लिम सभ्यता का कुप्रभाव है। हमारी संस्कृति में तो स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था।”

“हाँ” महिला ने अभिमान से समर्थन किया, “स्त्री घर की स्वामिनी होती थी। गार्गी आदि स्त्रियाँ वेदों की ऋचाओं की व्याख्या करती थीं। लीलावती ने गणित लिखी थी। यह तो विदेशी संस्कृति का फल था कि स्त्रियों को पराधीन बना दिया गया ?”

इतिहासज्ञ ऊँचे स्वर में प्रश्न कर बैठे—“क्यों बहिन जी, मनुस्मृति क्या औरंगजेब ने लिखी थी ? या हिन्दू संस्कृति के कन्यादान के पुण्य का विधान मुगलों ने किया था ? दान या मोल-तोल कभी स्वतन्त्र व्यक्तियों का नहीं किया जा सकता। दान किया जा सकता है केवल पशुओं और गुलामों का। आपकी संस्कृति में कन्यादान महान पुण्य और पवित्र कार्य समझा जाता था। आप ही बताइये, जिस व्यक्ति को आप दान में दे सकते हैं, आपके घर में उसका क्या अधिकार हो सकता है ? या जो व्यक्ति दान के रूप में आपके परिवार में आयेगा, उसकी स्थिति घर के लोगों के समान हो सकेगी ?”

सर्वोदयीजी ने गम्भीरता प्रकट करने के लिये एक गहरा निश्वास लेकर उपदेश दिया—“स्पर्धा और अधिकार के लोभ की प्रवृत्ति आपके मन में इतनी समा गयी है कि पति-पत्नी के पवित्र, आत्मिक सम्बन्ध में भी आप दासता, स्वामित्व और अधिकारों के बंटवारे का प्रश्न उठाने लगे हैं। इसका परिणाम क्या हो रहा है ?” द्रवित स्वर में उन्होंने प्रश्न किया और फिर कोमल स्वर में स्वयं उत्तर देने लगे, “इसका परिणाम हो रहा है, आचार की उच्छृङ्खलता और वैमनस्य ! हमारे ममाज का आदर्श तो पति-पत्नी में अटूट आत्मिक

सम्बन्ध, जन्म-जन्म का आत्मिक सम्बन्ध था । पति के बिना पत्नी जीवित नहीं रह सकती थी । उस सम्बन्ध की मधुरता.....”

“यह आप अपने स्वप्न और स्वार्थ और कल्पना की बात कर रहे हैं” कामरेड ने टोक दिया ।

इतनी अच्छी बात कहते-कहते सर्वोदयीजी को टोक देना श्रीमतीजी और महिला को अच्छा न लगा । उन्होंने असंतोष से कामरेड की ओर देखा परन्तु कामरेड कहते ही गये—

“यही तो हमारे पूर्वजों का चातुर्य था । स्त्री को आर्थिक रूप से अपने वश में रखने के बाद उन्होंने उस पर विश्वास का मानसिक बन्धन भी लगा दिया । अर्थात् यदि स्त्री पुरुष के अत्याचार से व्याकुल होकर, प्राणों की बाजी लगा कर भी भागना चाहे तो भाग न सके । स्त्री को यह भय रहे कि भाग कर क्या करूँगी ? मर कर भी तो इसी के पल्ले पड़ना होगा । आप पति-पत्नी के आत्मिक सम्बन्ध की, जन्म-जन्मान्तर के प्रेम की बात करते हैं परन्तु यथार्थ स्थिति क्या है ? हमारी चाची पन्द्रह बरस से हर मास नियमित रूप से तीन-चार बार पिटती आयी हैं । चाचा रात में दुकान से लौटते हैं तो वे प्रायः मुँह फुलाये, पीठ दिखा कर उनका स्वागत करते हैं । चाचा अपना क्रोध थप्पड़, मुक्के और लात से प्रकट करते हैं । चाची उन्हें मूँड़ चिड़ा और दाढ़ी-जार कह कर वरदान देती हैं—तेरे हाथों में कोढ़ फूटे । अपने माँ-बाप को कोसती हैं, जिन्होंने ऐसे ‘मसान’ के गले बाँधकर जिन्दगी भर का रोना कर दिया । नित्य भगवान को गुहारती हैं, रामजी मुझे उठा लें तो इस चण्डाल से पीछा छूटे । इस पर भी करवाचौथ का व्रत प्रतिवर्ष करती हैं कि फिर वही पति अगले जन्म में मिले । आप ही बताइये, यह क्या चाची की आत्मा की पुकार है ? हम ऐसे एक नहीं बीसियों परिवारों को जानते हैं । आप भी जानते होंगे । यथार्थ तो यह है, आप अपने समाज में नारी के महत्व की डींग हाँकते हैं । नारी जितनी असहाय हिन्दू-द्विज समाज में है, वैसी और किसी समाज में नहीं ।”

इतिहासज्ञ बोल उठे—“सीधी बात है, आप ही बताइये, सर्व-साधारण लोग घर में लड़का होने से खुश होते हैं, या लड़की ? स्वयं मातायें क्या चाहती हैं ? अपने पेट से लड़के का जन्म चाहती हैं या लड़की का ? माँ की यह इच्छा कि उसके गर्भ से माँ (लड़की) नहीं, बाप (लड़का) ही पैदा हो, माँ की दयनीय और पराधीन परिस्थिति का निर्विवाद प्रमाण है या नहीं ?”

भद्रपुरुष ने बीच-बचाव किया—“यह तो इसलिये कि परिवार का पालन पुरुष करता है।”

इन्हें टोक कर मार्क्सवादी बोल उठे—“जो परिवार का पालन करता है, वही परिवार का स्वामी होता है, परिवार पर उसी का शासन होता है। शासन और शासित में क्या समानता ? समाज परिवारों का समूह है इसलिये समाज पर पुरुष का शासन है। यदि स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष के आधीन और आश्रित रहेगी तो समाज में उसकी स्थिति पुरुष के समान कभी नहीं हो सकेगी। समाज में पुरुष के समान अधिकार और स्थिति पाने के लिये स्त्री का आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना आवश्यक है ?”

शुद्धसाहित्यिक अपने हाथ के चित्रमय साप्ताहिक के पन्नों के बीच उँगली रख उसे बन्द करते हुये बोले—“आप चाहते हैं कि परिवार में जो कुछ मधुरता है, नारी को स्नेह और ममता का आकर्षण मान कर, उसे पत्नी और माता मान कर उसके चारों ओर परिवार का जो जगत घूमता है, वह छिन्न-भिन्न हो जाय ? नारी को घर की सुरक्षा और प्रतिष्ठा से धक्का देकर बाजार में दुकानदारी, मिल में मजदूरी और दफ्तर में किरानीगिरी के लिये भेज दिया जाय ? क्या होगा ऐसे स्वार्थी समाज का चित्र ?” “वह समूचा समाज रेल के स्टेशन पर जगह के लिये झगड़ती भीड़ का सा हो जायेगा, जिसमें कोमल शिशु माँ की ममता की रक्षा से वंचित होकर गलियों में मारे-मारे फिरेंगे और पुरुष ममताहीन हिंस्रपशु की भाँति खूंखार हो जायेंगे ?”

शुद्धसाहित्यिक के स्वर में करुणा का कम्पन और आँखों में क्रोध की चमक आ गयी। उनकी व्याख्या से समाज के नाश की आशंका का आभास पाकर श्रीमती और महिला के कोमल भावों पर आतंक छा गया। शेष लोग भी उस आतंक को अनुभव कर रहे थे।

यह स्थिति देखकर सर्वोदयी जी ने उँगली उठा कर मार्क्सवादी को चेतावनी दी—“हमारे समाज की इस परम्परागत शांति पर आघात करने में आपका आर्थिक लोभ ही प्रधान कारण है। आप स्त्री के श्रम से लाभ उठाना चाहते हैं, आप उसकी कमाई खाना चाहते हैं। परन्तु याद रखिये, मातृत्व का कर्तव्य पूरा कर नारी जिस पद और सेवा की अधिकारी बन जाती है, उस पद और अधिकार से उसे गिराने की चेष्टा के अन्याय से समाज खण्ड-खण्ड हो जायेगा। पुरुष उस पाप का प्रायश्चित्त कभी नहीं कर पायेगा। मातृत्व के पद से बड़ा पद और क्या है ? मातृत्व के अधिकार से बड़ा अधिकार दूसरा

कौन है ? मातृत्व के सम्मान से बड़ा सम्मान कहाँ है ? नारी का जितना आदर हमारे समाज ने किया है, उतना ससार में कोई नहीं कर सकता । भगवान को जगत-माता कहा गया है । हमारे समाज ने नारी को माता कह कर उसका आसन भगवान के समीप रक्खा है ।” सर्वोदयी जी ने समर्थन की आशा से महिला और श्रीमती जी की ओर देखा । दोनों वास्तव में ही सन्तुष्ट जान पड़ीं ।

परन्तु वैज्ञानिक इस गम्भीर और भाव पूर्ण वक्तृता से कुछ भी प्रभावित न होकर पृष्ठ बैठे—“यदि सच कहने के लिये लिये अभयदान मिल सके तो एक बात कहूँ ?”

“कहो जी कहो !” मौजी ने बढ़ावा दिया ।

“सुनिये” वैज्ञानिक बोले—“मां बनने का हमारे समाज में कोई सम्मान नहीं है । नारी का स्वतन्त्रता से और अपनी इच्छा से मां बन जाना ही सब से बड़ा अपराध है । नारी का आदर अपने पति की पत्नी बनने और अपने पति के लिये सन्तान जनने में ही है ।”

इस बात से महिला को क्रोध आ गया और उन्होंने अपना मुँह दीवार की ओर कर लिया ।

श्रीमती जी ने लज्जा प्रकट करने के लिये आँखें झपक कर झुका लीं ।

सर्वोदयी जी ने वैज्ञानिक की ओर घूर कर फटकार बतायी—“आप में सभा में बैठने योग्य शालीनता नहीं है । इस धृष्टता के लिये आप को क्षमा माँगनी चाहिये ?”

बात आगे न बढ़ने देने के लिये वैज्ञानिक बोले—“हमने तो पेशगी आप से अभयदान और क्षमा माँग ली है । आपके पास जितनी और क्षमा हो, वह भी दे डालिये ?”

“आपका मतलब है” गम्भीर होकर मौजी ने प्रश्न किया, “कि समाज में विवाह के बिना ही सन्तान पैदा हो जाया करे !”

क्षमा माँगने के लिये विवश होने की झोंप की परवाह न कर वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—“आत्मिक सम्बन्ध से तो सन्तान पैदा हो नहीं सकती । स्त्री पुरुषों की साझी सन्तान पैदा होना ही उनका विवाह है । विवाह के बिना सन्तान हो कैसे सकती है ?”

लज्जा को वश कर श्रीमती जी ने तीखे स्वर में प्रश्न कर दिया—“वाह साहब, आपका मतलब है, पुरुष पर सन्तान के पालन की जिम्मेदारी न हो !”

मार्क्सवादी बोल उठे—“अपनी सन्तान के पालन की जिम्मेवारी तो नैतिक और प्राकृतिक जिम्मेदारी है……”

इन्हें टोक कर वैज्ञानिक ऊंचे स्तर में बोले—“हाँ है, परन्तु विवाह की जिम्मेवारी को जबरदस्ती लादना आर्थिक बंधन है। आत्मिक सम्बन्ध और जन्म-जन्मान्तर का प्रेम तो नहीं।”

शद्धमाहित्यिक जी ने चुटकी ली—“तो प्रेम क्या है, उच्छृङ्खलता, अनाचार ?”

“उच्छृङ्खलता तो तब होती है, जब प्रेम दिल बहलाव के लिये होता है और कला के लिये कला होती है।” वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, “हम तो प्रेम को जीवन के विकास और रक्षा का साधन मानते हैं। वह केवल व्यक्तिगत वस्तु नहीं, सामाजिक कर्तव्य के आधार पर दो व्यक्तियों का सम्बन्ध है। वास्तविक बात यह है कि आप स्त्रियों को समझा देना चाहते हैं कि विवाह ने उन्हें मातृत्व का महान पद मिल जाता है, एक पुरुष पर उनका अधिकार हो जाता है। अस-लियत यह है कि नारी आर्थिक बंधन में बंध कर पुरुष के वश हो जाती है ..”

इन्हें रोक कर इतिहासज्ञ बोले—“माँ के आदर का इतना शब्द-जाल और आडम्बर बाँधने से क्या लाभ ? अपने वंश के लिये सन्तान उत्पन्न करने के प्रयोजन से जिम नारी को आप दान में अथवा मोल में लाते हैं; वह माँ बन जाने पर भी आपकी ही चीज रहेगी, आप उसकी चीज नहीं बन जायँगे। आप धरती को भी माता कहते हैं और उसके मानिक बन कर उसकी खुरीद-फरोख्त करते रहते हैं। गाय को भी माता कह कर उसके गले में रस्सी बाँधे रहते हैं। वह दूध देती है तो उसे पुचकारते भी है और गैया माता के सींग दिखाने पर लाठी से उसकी खबर भी लेते हैं।”

महिला ने विस्मय से टोक दिया—“आप क्या माता के पद का भी आदर नहीं करते ?”

इतिहासज्ञ ने विनय से हाथ जोड़ दिये—“मैं आपका आदर अवश्य करता हूँ परन्तु मैं यह कैसे कह दूँ कि माता कह कर मैं जिसका आदर करता हूँ, वह मेरे पिता की प्रेयसी नहीं है और मेरे भावी पुत्र की आदरणीय माता को मेरी प्रेयसी नहीं बनना पड़ेगा ?”

श्रीमती को हँसी आ गयी, इसलिये उन्होंने साड़ी का आंचल होठों पर रख कर खांसने के बहाने मुख दूसरी ओर कर लिया। दूसरे लोगों के ओठों पर भी मुस्कराहट आ गयी।

महिला इधर-उधर लोगों के चेहरे देखकर बात समझ पाने का यत्न कर रही थीं।

सर्वोदयी जी ने क्रोध का पुट मिले गम्भीर स्वर में चेतावनी दे दी—
“आपको सभ्यता से बात करनी चाहिये !”

इतिहासज्ञ ने उतने ही गम्भीर होकर उत्तर में प्रश्न किया—“असभ्यता क्या है ?.....क्या यह असभ्यता है कि आपकी माता आपके पिता की पत्नी हैं ? क्या माता का गौरवमय पद पाने के लिये पहले किसी की प्रेयसी होना आवश्यक नहीं ? यदि माता का पद गौरवमय है तो प्रेयसी का पद गौरवमय क्यों नहीं ? माता के गौरवमय पद का परमिट प्रेयसी बनने में ही मिलता है। माता का पद तो केवल प्रेयसी हो सकने की परीक्षा में पास होने का प्रमाण पत्र ही है।

“और याद रखिये” वे चेतावनी के लिये सर्वोदयी जी की भाँति उँगली उठाकर बोले, “आपकी संस्कृति में नारी का गौरव उसके अपने व्यक्तित्व में नहीं है। उसका गौरव किसी की श्रीमती बन जाने में ही है। वह किसी की बेटी, किसी की बहू, किसी की माँ है। वह स्वयं कुछ नहीं है। आपके समाज में नारी को उसके व्यक्तिगत नाम से पुकारना उसका अपमान है। उसे अमुक की श्रीमती, अमुक की माँ या अमुक की बहन कहना ही उसका सम्मान है। अर्थात् नारी अपने वाक्तित्व को प्रकट करे तो वह उसकी निर्लज्जिता है। वह पुरुषकी छाया में छिपी रहे तो उसका सम्मान है। कैसी गुलामी सिखा दी है आपने स्त्री को..... ?”

कामरेड बोले—“वह तो केवल समाजवादी संस्कृति है, जिसमें नारी का अपना अस्तित्व है। वह अमुक की ही कुछ न होकर स्वयं भी कुछ होती है। जहाँ पुरुष के लिये प्राप्य सभी अवसर नारी के लिये भी सुलभ हैं। जैसे आप बाप बनने के साथ ही प्रोफेसर, इंजीनियर और डाक्टर बन सकते हैं, वैसे ही रूस में नारी माँ बनने के साथ ही, समाज के एक व्यक्ति के नाते समाज का महत्वपूर्ण अंग भी बन सकती है। वहाँ स्त्रियों को आपके देश की तरह, केवल चौके और बिस्तरे के लिए उपयोगी बनाकर सुरक्षित नहीं रखा जाता।”

श्रीमती जी और महिला मानों मानसिक आघात से दीर्घ साँसें ले रही थीं। जिज्ञासु, भद्रपुरुष और मौजी भी जैसे सोचने के लिये विवश हो गये थे। इस स्थिति का उपाय करने के लिये सर्वोदयीजी ने तुरन्त प्रश्न किया—“तो

आप चाहते हैं, हमारे समाज में भी स्त्रियों को रूस की तरह सामाजिक सम्पत्ति बना दिया जाये ?”

खिन्न स्वर में मार्क्सवादी ने उत्तर में प्रश्न किया—“आपने यह प्रश्न अज्ञान के कारण किया है अथवा यह धूर्तता है ? आप स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानते हैं, इसीलिये उसके सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की आशा भी आपके मन में होती है। समाजवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री को सम्पत्ति नहीं समझा जा सकता। उसका दान नहीं किया जा सकता। उसे खरीदा और बेचा नहीं जा सकता। वह किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नहीं, स्वतंत्र आत्म-निर्भर व्यक्ति है। जिन लोगों में स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझने का संस्कार चला आता है, उन्हीं के मन में स्त्री के सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की कल्पना उठ सकती है। जो लोग स्त्री को पुरुष के समान ही समाज का अंग समझते हैं, उनके मन में स्त्री के सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की कल्पना नहीं हो सकती। रूस के समाजवादी समाज में तो स्त्री आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर है। वहाँ समाज में नारी उतना ही अधिकार रखती है जितना कि पुरुष।”

सर्वोदयीजी ने फिर प्रश्न कर दिया—“क्या हमारे देश की नारी श्रम में पुरुष का हाथ नहीं बँटाती ? आप देहात में जाकर देखिये, वही तो असली देश है।”

“बटाती क्यों नहीं ?” मार्क्सवादी ने उत्तर दिया—“परन्तु श्रम में हाथ बटाने वाली नारियों की स्थिति आपके समाज में सम्मान-जनक नहीं समझी जाती। सिर पर पानी का घड़ा, उपलों की टोकरी या ईंधन का गट्ठा ढोने वाली अथवा मजदूरी करने वाली नारी के लिये आप राह छोड़कर अलग नहीं हो जाते। उसके सामने संयत भाषा का प्रयोग आप आवश्यक नहीं समझते। यह सब आदर होता है उन नारियों का जो पैदल चल सकने योग्य नहीं समझी जातीं, जो अपने हाथों कोई काम नहीं करतीं। हमारे सम्मानित समाज में नारी के लिये आदर की परम्परागत धारणा यह है कि वह पदार्थों की पैदावार में सहायक होने के लिये नहीं है। वह केवल भोग का साधन है। लड़की को पढ़ाकर क्या नौकरी करानी है ?” यह है आपके समाज की भावना। बड़े आदमी लड़की को इसलिये पढ़ाते हैं कि वह मँजे हुए और सुधरे ढंग से बात-चीत और व्यवहार कर सके, पति-रूप में किसी बड़े आदमी को पा सके। इसलिये सम्मानित समाज की नारी, पुरुषार्थी और बलवान होना तिरस्कार

का कारण और कोमल तथा निर्बल होना आदर का कारण ममझती है। इस 'गाड़ी-साड़ी' समाज की सम्मानित नारी खाना पकाने के लिये रसोइया, बर्तन और मकान साफ करने के लिये कहार, कपड़े धोने के लिये धोबी, सवारी के लिये गाड़ी और अपना बच्चा खिलाने के लिये आया माँगती है। वह अपने बढ़ाये हुये और रंगे हुये नाखून दिखाकर विश्वास दिलाता चाहती है कि उसके हाथों को कोई काम नहीं करना पड़ता। वै रामलीला की सजी हुई झाँकी या मोम के ताजिये की तरह समाज के लिये केवल देखने की और 'साहब' के लिये खेलने की वस्तु है। साहब अपने भोग का गौरव दिखाने के लिये उसका प्रदर्शन करता है। श्रीमती का यह बनाव-मिंगार भी उनका अपना गौरव नहीं, वरन् उनके मालिक का ही गौरव है, जिनके नाम का टिकट मेम साहब पर लगा है....."

शुद्धसाहित्यिकजी ने इन्हें टोक दिया—"आप क्या बकते जा रहे हैं ? समाज की सम्पूर्ण संस्कृति और परिष्कार को गाली दिये जा रहे हैं !"

मार्क्सवादी बिगड़ उठे—"आपके विचार में समाज के लिये आवश्यक पदार्थों की पैदावार और कार्यों में भाग न लेना और अपने भाग से कहीं अधिक खर्च कर खा जाना ही परिष्कार और संस्कृति है ? हम इस संस्कृति और परिष्कार से मुक्ति ही चाहते हैं।"

भद्रपुरुष गम्भीरता से बोले—"परन्तु ऐसा समाज तो गिना-चुना है। मध्यम श्रेणी और निम्न-मध्यम-श्रेणी की स्त्रियाँ तो घरों का सब नहीं तो बहुत सा काम-धन्धा करती ही हैं, परिवार का सब बोझ उन्हीं के कंधों पर होता है।"

सहारा पाकर श्रीमतीजी बोलीं—"जी हाँ, और क्या ? दिन भर काम से छुट्टी नहीं मिलती। घर के चौके चूल्हे का काम ही कितना होता है ? सुबह का चौका दोपहर तक खत्म होता है और दोपहर से रात के चौके का काम शुरू....."

"आप ठीक कहती हैं" मार्क्सवादी ने सहानुभूति से स्वीकार किया—"मध्यम और निम्न-श्रेणी की स्त्रियों का पूरा जीवन चौके और झाड़ू में ही जाता है परन्तु यह एक ओर समाज के साथ और दूसरी ओर स्वयं निम्न-मध्यम-श्रेणी की स्त्रियों के साथ भी कितना बड़ा अन्याय है कि समय का आधा भाग केवल खाना पकाने की ही सेवा में लगा रहे। समाज की श्रम-शक्ति का यह कितना बड़ा अपव्यय है ? एक स्त्री जो समाज के लिये डाक्टर का, मैनेजर का, अध्यापक का, क्लर्क का, स्टेशन मास्टर और डाक बाबू का,

फोटोग्राफ़र का, दर्जी का, कम्पोज़ीटर का काम कर सकती है, आयु भर केवल खाना बनाने का काम करती रहे और दिन भर की मेहनत के बावजूद अपने पेट की रोटी के लिये एक मर्द को मोहताज़ बनी रहे ?”

शुद्धसाहित्यिकजी ने विद्रूप से प्रश्न किया—“आप चाहते हैं कि सब लोग होटलों में खाना खाया करें ?”

“होटल का खाना भला किस काम का ?” श्रीमतीजी ने उनका समर्थन किया ।

वैज्ञानिक बोले—“आपका मतलब है कि कुछ लोगों के चटोरपन के लिये समाज का आधा अंग रसोइया बना रहे ? खाना क्या स्त्रियों के हाथ से ही स्वादिष्ट बनता है ? उनकी हथेली में मसाला और घी तो पसीजता नहीं । होटलों में जैसे खाने वाले होंगे वैसा ही खाना बनेगा । बड़े-बड़े होटलों में खराब खानाखाने के लिये ही लोग इतना दाम देते होंगे ? छोटे-मोटे होटलों में केवल गिने-चुने, बे ठौर-ठिकाने के लोग कभी-कभी जायंगे तो होटल से मुनाफ़ा कमाने वाला उतने से ही गुजारा निकालेगा । लेकिन यदि जाने-पहचाने लोग नित्य आने लगेंगे तो बात दूसरी होगी । खाना जितने समय में दो आदमियों का बनता है उतने ही समय में पाँच का, और लगभग उतने ही ईंधन में ? कमी और महंगी के इस ज़माने में प्रत्येक घर से फैंको जाने वाली जूठन का भी अनुमान कीजिये ? काम चाहे जितनी बचत से और छोटे परिमाण में किया जाय, कुछ न कुछ छीजन तो जाती ही है । यदि खाना सामूहिक रूप से बनने लगे तो समाज के कितने व्यक्ति दूसरे उपयोगी कामों के लिये मिल सकेंगे ? समाज का कितना अपव्यय बचेगा ? सबसे बड़ी बात ; नारी आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर न रहने के कारण, समाज में स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर व्यक्ति बन सकेगी ।”

“आप समझते हैं, हर बात में रूस की नकल कर लेना ही मुक्ति का मार्ग है !” सर्वोदयीजी ने वितृष्णा से मुस्करा कर उत्तर दिया, “हमारे देश में फिलहाल मर्दों को ही रोज़गार नहीं मिल रहा, आप स्त्रियों को भी रोज़गार ढूँढ़ने के लिये कहिये, बेरोज़गारी बढ़े, आर्थिक संघर्ष और बढ़े ?”

मार्क्सवादी ने उत्तर दिया—“जिस ढंग से रूस को उन्नति करने में सफलता मिली है, उस ढंग को हम केवल इसीलिये न अपनायें कि वह रूस का ढंग है, यह भी क्या दलील है श्रोमान !” वे ऊँचे स्वर में बोले, “घरों में वन्द, केवल रसोई बनाने में जिन्दगी काट देने वाली स्त्रियाँ बेकार नहीं

तो क्या हैं ? आपको समाज में बेकारी का भय तो दीखता है परन्तु यह नहीं दीखता कि आजकल समाज के अधिकाँश लोगों की नितान्त आवश्यकतायें भी पूरी नहीं हो रहीं हैं ? समाज में बेकारी भी हो और समाज की आवश्यकतायें भी पूरी न हो सकने में, आपको कोई सम्बन्ध नज़र नहीं आता ?”

“इनके विचार में” कामरेड ने टोक दिया, “लोगों का बेकार रहना और उनकी आवश्यकतायें पूरी न हो सकना, पूर्व जन्म के कर्मों का फल और भगवान की इच्छा है।” कामरेड हँस दिये परन्तु दूसरे लोग प्रश्न की जटिलता के बोझ के कारण हँस नहीं पाये।

“भगवान की इच्छा नहीं है तो आप इसका उपाय कर लीजिये” सर्वोदयी जी ने चुनौती दी, “समाज में विषमता मदा रही है। ईश्वर की प्रेरणा से मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाली सद्भावना ही इस विषमता का उपाय कर सकती है, समझे आप !”

कामरेड ने इनकार में मिर हिला दिया—“हरगिज नहीं, आपका अभिप्राय है कि ईश्वर समाज में विषमता उत्पन्न करता है और फिर उस विषमता को दूर करने के लिये मनुष्य के हृदय में सद्भावना उत्पन्न करता है। यह अच्छा मज़ाक है। ईश्वर की प्रेरणा और ईश्वर के नाम पर पाये अधिकार से ही शोषक वर्ग ने, अपने स्वार्थ के लिये समाज में विषमता पैदा की है और श्रमिक वर्ग और स्त्रियों को अपने भोग और सेवा का साधन बनाया है। रूस में सर्व-माधारण जनता का भ्रम दूर हो जाने में ईश्वर की प्रेरणा मिट गयी है इसलिए जनता को विषमता दूर करने का अवसर मिल गया है।”

मौजी ने इन्हें टोक कर विस्मय के स्वर में पूछ लिया—“कामरेड क्या कहते जा रहे हैं ? क्या नाखून और होंठ रंग कर, एक मकान की कीमत की साड़ी में चाकलेट की तरह लिपटीं, और एक आदमी की उम्र भर की कमाई की कीमत की मोटर में बैठ कर चलने वाली महिलाओं को भी आप शोषित कहेंगे ? उनसे बड़ा शोषक कौन होगा ?”

“नहीं वह शोषक नहीं, शोषित ही हैं” कामरेड ने आग्रह किया, “शोषण तो वह कर सकता है जिसके हाथ में शक्ति हो। सम्पन्न लोगों के किनोद का खिलौना, यह बेचारी शोषण करेंगी ? इनमें खेलने वाले जिम तरह चाहते हैं, इन्हें रखते हैं। जलसे के समय अपना शौक पूरा करने के लिये आप बैंड बजाने वालों को कमाण्डर-इन-चीफ की वर्दी पहना दें तो वे बेचारे कमाण्डर-इन-चीफ

नहीं बन जायेंगे, रहेंगे आपके शोक का साधन ही। ऐसे ही सम्पन्न श्रेणी की हाथ-पांव और मुह रग कर, मोटर पर सवारी करने वाली महिलाओं का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। वे 'किसी की श्रीमती जी' हैं। उनके श्रीमान की स्थिति के अनुसार ही उनका आदर है। यह आदर वास्तव में उनका नहीं, उनके श्रीमान के खिलौने का या उनके श्रीमान का ही है। सीधी बात है, आप बड़े साहब के कुत्ते से भी डरते हैं। वह आपको भौंके तो भी उसे सहसा मार बैठने का साहस नहीं होता। जिस व्यक्ति का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं, उससे अधिक शोषित कौन होगा? अगर यह श्रीमतियाँ अपनी इस स्थिति पर गर्व करती हैं तो यह इनकी मनुष्यत्वहीन, व्यक्तित्वहीन अत्यन्त गिरी हुई मानसिक अवस्था का परिणाम है।"

अपनी बात रही जाती देखकर मार्क्सवादी ने सर्वोदयी जी को सम्बोधन किया—“आप कहते हैं कि स्त्रियों के घर की चारदिवारी से बाहर निकल कर, रोजगार ढूँढने से समाज का सकट और बेकारी बढ़ेगी?”

“हाँ सो तो होगा ही” सर्वोदयी जी ने चारों ओर देखकर अपनी बात दोहरायी, “सब जानते हैं, ऐसा तो होगा ही!”

“हम कहते हैं ऐसा नहीं होगा।” मार्क्सवाद ने अपनी हथेली पर मुक्का मार कर अपनी बात पर बल दिया—“रूस में ऐसा नहीं हुआ और भारत में भी ऐसा नहीं होगा। मध्यम श्रेणी की स्त्रियाँ आज दिन समाज के लिये आवश्यक पदार्थों की पैदावार में भाग नहीं लेती परन्तु वे पदार्थों का उपयोग या खर्च तो करती हैं। यदि वे कुछ उपयोगी काम करने लगेंगी तो इससे समाज को हानि होगी या लाभ?”

“परन्तु भाई काम है कहाँ?” भद्रपुरुष ने प्रश्न किया, “यही लोग बेकार हो रहे हैं। एक हजार स्त्रियाँ क्लर्क बनने के लिये दफ्तरों की ओर भागेगी तो एक हजार क्लर्क बेकार हो जायेंगे और क्लर्क इतने अधिक हो जायेंगे तो उनकी तनखाह स्वयं कम हो जायगी। बाजार में चीजों की रसाई और जरूरत के हिसाब से ही तो चीजों के दाम पड़ते हैं।”

आप अर्थशास्त्र की बात कर रहे हैं।” मार्क्सवादी बोले—“कि बाजार में किस पदार्थ की माँग कितनी है और वह पदार्थ कितना मिल सकता है, इस हिसाब से पदार्थ के दाम निश्चित होते हैं। पदार्थ की माँग और उसकी रसाई के हिसाब का प्रभाव भी दामों पर पड़ता है परन्तु दामों पर कई दूसरी बातों का भी असर पड़ता है। किसी एक वस्तु की माँग सीमित हो सकती है

परन्तु श्रम-शक्ति की माँग की सीमा नहीं है। क्योंकि श्रम-शक्ति केवल एक ही वस्तु तो उत्पन्न नहीं करती। वह तो सभी पदार्थ उत्पन्न करती है। श्रम-शक्ति का दाम तब घटता है जब मजदूर अपना श्रम मुनाफाखोर के हाथ बेचता है। जिस समाज में पदार्थों को उपयोग के लिये पैदा किया जाता है और जिस समाज में जनता के लिये सभी प्रकार के पदार्थ अधिक से अधिक उत्पन्न करने की जरूरत हो, वहाँ ऐसा नहीं होगा।” क्या आप समझते हैं कि समाज के सर्व-साधारण को जिन पदार्थों की जितनी आवश्यकता है, वह सब पूरी हो रही है, और अधिक पैदावार करने की जरूरत नहीं है?”

स्वयं भद्रपुरुष ने ही ऊँचे स्वर में विरोध किया—“कौन कहता है कि आवश्यक चीजें मिल रही हैं? मकान नहीं, कपड़ा नहीं, खाना नहीं, दवाई नहीं, कुछ भी तो नहीं मिल रहा!”

“तो फिर समाज में कोई भी व्यक्ति बेकार क्यों रहे? और समाज की स्त्रियों के पैदावार में भाग लेने से, काम करने वालों की संख्या जरूरत से अधिक हो जाने का भय आपको कैसे हो सकता है?” मार्क्सवादी ने पूछा और बोले, “समाज में काम और पैदावार करने वालों की संख्या जितनी अधिक होगी, पैदावार उतनी ही अधिक हो सकेगी, खरीद सकने की शक्ति भी उतनी ही बढ़ेगी। उतना ही समाज का कल्याण होगा। यदि आप पैदावार को कुछ व्यक्तियों के मुनाफे का साधन बना दें और उनके मुनाफे के विचार से दाम बढ़ाने के लिये पैदावार रोक दें तो बात दूसरी है। मुनाफा कमाने के लिये श्रम-शक्ति का मूल्य (मजदूरी) कम रखा जाता है और मजदूरी कम रखने के लिए कुछ लोगों को बेकार रखना भी जरूरी हो जाता है।

“इसके अतिरिक्त” दूसरों को चुप देखकर मार्क्सवादी बोलते ही चले गये, “यह कौन न्याय है कि पुरुषों को कारोबार दूढ़ने में असुविधा होगी इसलिये स्त्रियाँ पिजरों में बन्द रह कर, पुरुषों की मोहताज और गुलाम बनी रहें? समाज के पूर्ण विकास के लिये, समाज के आधे भाग स्त्री का सहयोग आवश्यक है। स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता स्त्री का मानवी अधिकार है। आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ नहीं, वह ढोंग मात्र है। पूँजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता का विरोध करके, स्त्री को अपने भोग की वस्तु बनाये रखना चाहती है।”

अब की बार वैज्ञानिक मार्क्सवादी को सम्बोधन कर बोले—“आप बात करते हैं स्त्री के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की, परन्तु पूँजीवादी संस्कृति

से प्रभावित पढ़ी-लिखी महिला की महत्वाकांक्षा आत्मनिर्भर होने की है ही नहीं। वह आत्म-निर्भरता की जिम्मेदारी नहीं चाहती। वह चाहती है, पुरुष से लाड़ और नाजबरदारी। वह चाहती है, मिल-मालिक या आई० ए० एस० पति। एम० ए० और एम० बी०, बी० एस० तक अपनी पढ़ाई पर रुपया फूंक कर वह चाहती है केवल बैरे पर हुक्म चलाना। उसका बी० ए०, एम० ए० उपयोगिता के लिये नहीं, केवल पति फँसाने का लेबल मात्र है। वह चाहती है, भीड़ में उसके लिये राह छोड़ दीजिये, सभा में उसे आगे कुर्सी दे दीजिये। वह चाहती है कागज में लिपटी बोटल की तरह, शरीर रेखायें दिखा कर समाज में थिरकना। अपने निर्वाह के लिये कमाना वह अपने नारीत्व की बेकदरी समझती है। वह दफ्तर में या मिल में काम करने से बेहतर मर जाना समझती है। उसकी पढ़ाई का उपयोग यह है कि वह ठोड़ी पर उँगली रख कर विस्मय प्रकट कर सकती है—ओह गॉड हाओ लवली ! यह है भद्रश्रेणी की महिला जो 'महिला-आन्दोलन' चलाती है। यदि नारी आंदोलन से समाज का कुछ भला चाहते हैं, तो यह आन्दोलन उन स्त्रियों के हाथ में होना चाहिये जो आर्थिक पराधीनता अनुभव करती हैं और संघर्ष द्वारा आत्म-निर्भरता में विश्वास करती हैं।”

इनके चुप होते ही कामरेड बोल उठे—“पूँजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता का विरोध इसलिये करती है कि आर्थिक क्षेत्र में आकर स्त्री जीविका कमाने वाली, साधनहीन श्रेणी का अंग और सहायक बन कर, इस श्रेणी की शक्ति को बढ़ायेगी। स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता समाजवादी व्यवस्था का अनिवार्य अंग है और स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता समाजवाद की प्राप्ति और स्थापना में सहायक होगी। इसीलिये पूँजीवादी व्यवस्था, स्त्री की गुलामी या पर्दे के आधार पर जमायी गयी प्रतिष्ठा की धारणा से, उसे कोमल और दयनीय बताकर, उसे आर्थिक संघर्ष से दूर रखना चाहती है। पूँजीवादी व्यवस्था स्त्री को केवल मोहक बनाने के लिये, उसे नज़ाकत और नखरा सिखाने के लिये, अपने भोग और मनोरंजन के लिये, उसे चुलबुलेपन का अवसर देने के लिये 'कलात्मक' शिक्षा देने के लिये तो तैयार है परन्तु स्त्री की पराधीनता के बन्धन तोड़कर उसका आत्म-निर्भर बन जाना, पूँजीवादी संस्कृति को स्वीकार नहीं। समाज को शोषण की व्यवस्था में रखने वाले सभी बन्धन पूँजीवादी व्यवस्था के रक्षक हैं। इनमें से किसी भी बन्धन का टूटना पूँजीवादी व्यवस्था को स्वीकार नहीं।”

मार्क्सवादी और कामरेड की बात स्वीकार करने के लिये विवश होकर महिला और श्रीमती जी ने उत्तर की आशा से सर्वोदयी जी की ओर देखा ।

सर्वोदयी जी मुस्करा दिये और मधुर स्वर में बोले—“नारी के लिये तो सेवा का जो ऊँचा आदर्श बापू बता गये हैं, उसके सिवा नारी की मुक्ति कहाँ है ? सेवा के मार्ग में ही नारी की मुक्ति है ।”

“बहुत ठीक” मार्क्सवादी ऊँचे स्वर में बोल उठे, “नारी सेवा का साधन मात्र बनना चाहती है तो उसके लिए बापू के चरणों में स्थान है । यदि वह आत्मनिर्भर, स्वतन्त्र मनुष्य बनकर पुरुष के कंधे के बराबर खड़ी होना चाहती है । तो उसके लिये मार्क्सवाद का ही मार्ग है ।”



राम-राज और मजदूर-राज की नैतिकता

अभी सबेर ही थी पर सर्वोदयी जी, मार्क्सवादी और इतिहासज्ञ क्लब में जागये थे। कोई बहस आरम्भ न होने से तीनों उस दिन के अखबार के पन्ने वाँट कर पढ़ रहे थे।

मौजी और जिज्ञासु भी आ गये—“कहिये यह चुप्पी कैसी ?” पूछ कर वे भी दीवार से पीठ लगा एक ओर बैठ गये ?

जिज्ञासु ने पहले तो मार्क्सवादी की बगल से अखबार में झाँका। शहर में चलने वाली सब फिल्मों के नाम पढ़ गये। अखबार में कोई उत्साह अनुभव न कर उन्होंने दीवार से सिर टिका कर मौजी को सम्बोधन किया—“अजी क्या सन्नाटा खींचा हुआ है सब लोगों ने ? मौजी भाई, तुम्ही कुछ सुनाओ !”

“क्या सुनायें भाई ?” कुछ भारी आवाज में मौजी ने उत्तर दिया, “जुकाम से परेशान” इनकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि पड़ोस में एक ‘पुरुषार्थी बन्धु’ के नये खुले होटल से ग्रामोफोन चिल्ला उठा—

“आई बहार है, जिया वेकरार है,
आजा मेरे बालमा तेरा इंतजार है।”

पास-पड़ोस की अनेक छोटी-मोटी दुकानों के ग्राहकों को अपने वहाँ बटोर कर उनकी सेवा करने के लिये ‘पुरुषार्थी बन्धु’ ने बड़ी सी दुकान चाब-पानी और खाने-पीने की खोली है। ग्राहकों के मनोविनोद के लिये और सड़क पर चलते लोगों को आकर्षित करने के लिये, वे ग्रामोफोन पर लाउड स्पीकर लगा कर, फिल्मी गानों के नये-नये रिकार्ड बजाते रहते हैं।

“लो सुन लो, हमें परेशान करने की क्या जरूरत ?” मौजी ने सड़क से आते गीत के स्वर की ओर संकेत कर उत्तर दिया, “सुन लो, यह डिब्बे का गाना !”

“डिब्बे का गाना कैसा ?” ठोड़ी उठा कर सर्वोदयी जी ने जिज्ञासु से प्रश्न किया ।

“अरे भाई जैसे डिब्बे का दूध होता है” मौजी रूमाल में नाक पोंछते हुये बोले, “गैय्या विलायत में और दूध आपके घर में ! गैय्या को बछड़ा दिखा कर पुचकारने की जरूरत नहीं । जब चाहा रात-बिरात डिब्बा खोल लिया । वैसे ही खुशामद की जरूरत नहीं । गाने वाली बम्बई-कलकत्ता में रहे ; आपका जब जी चाहा, रिकार्ड लगा लिया ।”

अपने हाथ का अखबार एक ओर रख कर मार्क्सवादी ने गम्भीरता से कहा—“भाई ग्रामोफोन और रेडियो से गरीब आदमियों का बड़ा भारी उपकार हो गया है । पहले गाना-मुजरा रईमों और दरबारियों की ही चीज़ थी । हम तुम चाहते कि कोई कलावंत हमारे लिये गा दे तो अपने बस की तो बात थी नहीं । अब गाने वाला चाहे एक गाने के सौ-पाँच सौ रुपये ले सकता है परन्तु आप चार पैसे का चाय का प्याला खरीदिये और गाना मूफ्त में सुनिये ! यह है विज्ञान की बरकत कि आवाज़ को गले से, गीत को गाने वाले से, कला को कलाकार से अलग कर लिया ?”

“लेकिन यह भी अमीरों के ही लिये है ?” जिज्ञासु बोले, “गरीब आदमी बेचारा ग्रामोफोन कहाँ खरीद सकता है ?”

इतिहासज्ञ ने भी हाथ का अखबार रख दिया और बोले—“गरीब आदमी ग्रामोफोन नहीं खरीद सकते लेकिन सड़क पर टहलते-टहलते गाना सुन सकते हैं । फर्ज कीजिये कि अकबर, शाहजहाँ का जमाना होता । यह फिल्म में गाने वाली बीबी शाही महल में बन्द कर ली गयी होतीं । हम और आप इनका गाना सुन पाते ?”

“गाना गया भाड़ में” भद्रपुरुष आकर एक ओर बैठे ही थे, बोले, “रोटी तो पेट भर खाते थे सब लोग ?”

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट कर कहा—“कौन जाने; सब लोग भर पेट रोटी खाते थे या नहीं ? अकबर, शाहजहाँ जरूर मुर्ग-मुसल्लम खाते थे और शीराजी शराब भी हिमालय से लायी गयी बरफ में ठण्डी करके पीते थे ।”

“हां हां, सभी लोग पेट भर कर खाना खाते थे, दस-पाँच को खिला कर खाते थे । अब तो राशन का जमाना है । तीन छटांक आटा और तीन छटांक चावल मिलता है भैया ! कोई क्या खाये और क्या खिलाये ।” भद्रपुरुष ने अपनी बात दोहरायी ।

सन्देह प्रकट करने के लिये सिर हिलाते हुये इतिहासज्ञ बोले—“हमें तो बहुत सन्देह है कि उस ज़माने में सब लोग पेट भर कर मनचाहा खाते रहे हों और जरूरत भर कपड़ा पाते हों ? सम्भव नहीं जान पड़ता ।”

“क्या अजीब बात कहते हैं आप ?” राष्ट्रीय जी ने अपने राष्ट्रीय-गौरव का अपमान अनुभव कर खिन्नता प्रकट की, “चार आने का मन भर तो अनाज विकता था उस ज़माने में; फिर भी लोग भूखे रहते होंगे ?”

“अनाज तो चार आने का मन भर मिलता था” मार्क्सवादी बीच में बोले, “पर चार आने भी मिलते थे या नहीं, यह भी तो प्रश्न है । कहने को तो आजकल कागज के टुकड़ों (नोट) से सब कुछ खरीदा जा सकता है परन्तु वह कागज का टुकड़ा पा लेना ही तो बड़ी बात है बाबू जी !”

अब सर्वोदयी जी ने भी बोलना आवश्यक समझा—“आपका अभिप्राय है कि इस देश में पहले अधिक कंगाली थी ?”

“इस देश में क्या” इतिहासज्ञ ने हाथ फैलाकर उत्तर दिया, “अधिकांश जनता के लिये संसार भर में पहले कंगाली ही थी । अब पैदावार के साधन अधिक हैं तो समृद्धि की सम्भावना भी अधिक है ।”

“इसको आप समृद्धि कहते हैं” विस्मय से भवें ऊँची कर सर्वोदयी जी ने पूछा ।

जिज्ञासु ने इनका समर्थन किया—“इतिहासज्ञ जी, यह तो आप नयी बात कह रहे हैं । सभी लोगों का विश्वास है कि अंग्रेजी राज्य के शोषण से पूर्व इस देश की अवस्था समृद्ध थी । आप बता रहे हैं कि देश और समृद्ध हो गया है । यह कैसे माना जा सकता है ?”

बहुत गहरी सांस खींच कर इतिहासज्ञ आगे बढ़े—“सुनिये ! अंग्रेजी राज में भारत का बहुत शोषण हुआ है, इसमें तो सन्देह की गुंजाइश नहीं । यह भी ठीक है कि अंग्रेजों ने अपने व्यापारी स्वार्थ के लिये, तत्कालीन भारतीय उद्योग-धन्धों को बरबाद कर दिया, जिससे कंगाली बढ़ी । परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि भारत में अंग्रेजी राज से पहले साधनहीन श्रेणी का शोषण नहीं था या सभी श्रेणियाँ समृद्ध थीं ।

“अधिक से अधिक आवश्यकताओं का पूरा होना ही समृद्धि है । इस युग में पहले युगों की अपेक्षा, बहुत अधिक लोगों की आवश्यकतायें, पहले से बहुत अधिक पूरी होती हैं और मनुष्यों की बुद्धि तथा विचारों का भी विकास पहले से बहुत अधिक है ।”

जिज्ञासु ने अपना प्रश्न दोहराया—“आप कहते हैं, मनुष्य-समाज पहले से उन्नत और सुखी है ?”

“पहले से तो निश्चय ही उन्नत और सुखी है” इतिहासज्ञ ने बल देकर उत्तर दिया, “अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकने के अवसर की दृष्टि से, आज मध्यम श्रेणी का साधारण व्यक्ति उतना ही समृद्ध और सुखी है जितना किसी समय कोई राजा होता था। सर्व-साधारण पहले की अपेक्षा स्वतन्त्र भी अधिक है। हां, व्यक्तिगत निरंकुशता का अवसर आज बेशक नहीं है।”

“भाई इतना तो हम दावे से कह सकते हैं” मौजी जरा उच्चक कर बोले, “अगर कोई आदमी जहाँगीर को बिजली की एक टार्च भेंट कर देता, तो जहाँगीर ने सौ-पचास गाँव बख्शीश में दे दिये होते और अगर कोई उन्हें मोटर दे देता, तो उन्होंने अपनी सलतनत बक्श दी होती” मौजी स्वयं ही जोर से कहकहा लगा कर हँस पड़े, “मोटर को वे जिन्न की करामात से कम क्या समझते; या भगवान की शक्ति का चमत्कार मान लेते।”

“वाह खूब कहा आपने” राष्ट्रीय ने समर्थन किया, “जहाँगीर पियक्कड़ ही तो थे ?”

मौजी अपने स्थान पर और उच्चक गये—“पियक्कड़ ? आप गौर तो कीजिये, न आग, न तेल और रोशनी ! इससे बड़ा जादू या चमत्कार क्या होता उस ज़माने में ? जनाब, टार्च दिखाने वाले को तो उस ज़माने के लोग फरिश्ता या जिन्न समझ लेते ?” मौजी कहकहा लगाकर हँस पड़े।

उस कहकहे की उपेक्षाकर इतिहासज्ञ ने अपनी बात जारी रखी—“आपको इस बात से विस्मय होता है ? मामूली बात लोजिये, पिछले समय में यदि कहीं पत्र भेजना होता था तो केवल कोई राजा ही चार-पाँच घुड़सवारों को इकट्ठा कर अपना पत्र भेज सकता था। आज आप तीन पैसे का पोस्ट कार्ड, प्रतिदिन दो हजार मील दूर तक भेज सकते हैं। यह सुविधा शहनशाह अकबर को भी न थी। आज अधिकांश शहरों में आपके घर के भीतर हर समय जल बहता रहता है। नलकों का चलन होने से पहले, एक घर में इतनी इफरात मे खर्च करने के लिये पानी लाया जाता, तो दस-दस कहार लगते ! जितने जल से आज आप नहाते हैं ; कुर्ये से पानी खींच कर नहाने वाला कभी नहीं नहा सकता। इतने जल से नहाने के लिये सेठ को बीस कहार रखने पड़ते। सब आदमी न सही, हजारों आदमी आजकल दिन-रात पंखों के नीचे बैठते हैं। वाजिदअलीशाह के ज़माने में यदि सारा हिन्दुस्तान पंखे

खीचने और डुलाने के काम मे जोत दिया जाता, तो भी इतने आदमियों को पखा नहीं मिल सकता था । उस जमाने मे जहागीर तजेब का एक अँगरखा पहनते थे और उनकी मलका मुअज्जमा मलमल की साड़ी । दो-तीन गाँव की कातने वालियाँ और जुलाहे इस कपड़े की कताई-बुनाई मे लगते होंगे तो जाकर साल-छः मास मे वह पोशाक बनती होगी । आज इसके चलाने वाले तक मशीन से बने तजेब के कुर्ते पहनते हैं और अपनी घरवाली को मलमल की साड़ी पहनाते हैं । उस जमाने के बीसियों शहनशाहो मे एक जहागीर काश्मीर देख आये । आज हर साल दसियों हजार आदमी काश्मीर, शिमले की हवा खा आते हैं । जहागीर काश्मीर जाते थे तो दिल्ली-आगरा का हाल जानने के लिये उनका दिल धडकता रहता था । आज लखनऊ-दिल्ली के गुड-तेल बेचने वाले भी अपने घर बैठ कर, कलकत्ता-बम्बई मे फोन पर भाव, खरीद-फरोस्त करते रहते हैं । अरे भाई, सीधी बात है, मनुष्य विज्ञान के विकास से और यंत्रों की सहायता से प्रकृति पर विजय पा रहा है । अपनी आवश्यकताये आज वह प्रकृति से पहले की अपेक्षा अधिक सुविधा से पूरी कर सकता है । जो बातें पहले राजाओ के लिये न्यामते थी आज सर्व-साधारण के लिये सुलभ है । पहले मनुष्य पैदावार व्यक्तिगत रूप मे करता था । उसकी पैदावार की शक्ति कम थी । आज पैदावार सामूहिक और सामाजिक ढंग से होती है । पैदावार की शक्ति सौगुना बढ़ गई है ।”

“परन्तु यह हम कैसे मान ले कि उस युग मे जब इतनी मस्ती थी, समाज के अधिकाँश लोग भूखे-नगे रहते थे ?” जिज्ञासु ने अपने प्रश्न पर जोर दिया ।

“यह आपको इसलिये मानना पड़ेगा कि उस समय पैदावार की शक्ति ही मनुष्य-समाज मे कम थी । प्रमाण चाहते हैं आप ?” इतिहासज्ञ ने पूछा और बोले, “उस युग मे, जब यंत्रों का आविष्कार नहीं हुआ था, एक समृद्ध परिवार के लिये, जल भरने के लिये दस कटारों की जरूरत थी या नहीं ? परिवार के लोगों की पालकियाँ उठाने के लिये दस आदमियों की जरूरत थी या नहीं ? उन्हें पखा करने के लिए कुछ आदमियों की जरूरत थी या नहीं ? और समृद्ध परिवारों को इन सब कामों के लिये आदमी इफरात से मिल जाते थे । स्पष्ट है कि भूमि या पैदावार के माधनों की मालिक श्रेणी प्रजा की बहुत बड़ी सख्या को ऐसी अवस्था मे विवश रखती होगी कि यह लोग अपना पेट भरने के लिये, मालिकों की किसी भी सेवा के लिये इच्छुक रहे । स्वतंत्रता से पेट भरने का अवसर हाथ मे रहने पर, कोई मोहताजी करना पसन्द नवो

करेगा ? परिस्थितियों से विवश हुये बिना दूसरे की सेवा करने के लिये कोई क्यों तैयार होगा ? उस समय ऐसे सेवकों की कमी न होगी, इस बात का प्रमाण है कि इस श्रेणी के लोग अपना पेट भरने के लिये समृद्ध श्रेणी के या पैदावार के साधनों की स्वामी श्रेणी के बस में थे, उनकी दया पर निर्भर करते थे । ज्यों-ज्यों यंत्रों का विकास होता गया, पैदावार तथा आवश्यकता पूर्ति के लिये कम आदमियों की आवश्यकता होने लगी, साधनों की मालिक श्रेणी अपने आधीन श्रेणी के पालन की जिम्मेवारी अपने कंधों से हटाने लगी और मेहनत-मजदूरी करने वाली श्रेणी पहले की अपेक्षा स्वतंत्र होने लगी । यहाँ तक कि दासता की प्रथा, जो एक समय ईश्वर की आज्ञा और धर्म का अंग समझी जाती थी, पाप समझी जाने लगी । सब मनुष्यों में समानता की धारणा पैदा हो गयी । यह समाज के जीवन का ढंग, अर्थात् आवश्यक वस्तुओं की पैदावार का ढंग, यंत्रों के विकास के कारण बदल जाने से ही सम्भव हो सका ।”

सर्वोदयीजी इतिहासज्ञ की इस लम्बी व्याख्या को अस्वीकार करने के लिये सिर हिलाकर बोले—“आप कहते हैं, यंत्रों के विकास ने मनुष्यों को स्वतन्त्र कर दिया है, इससे मनुष्य उन्नत हो गया है यह बिलकुल गलत है” उन्होंने अपने हाथ की उँगलियों को समेट कर बिलकुल गलत का संकेत करते हुए बहुत जोर से कहा—“बिलकुल गलत । आप कहते हैं, मनुष्य प्रकृति को जीत रहा है । यह बात भी गलत है । यंत्रों के विकास ने मनुष्य को प्रकृति का दास बना दिया है । मनुष्य पशु हो गया है । इस युग में यंत्रों के ही प्रभाव से मनुष्यों में असत्य और हिंसा पैदा हो गयी है । मनुष्य का घोर नैतिक पतन हो गया है । इसके विपरीत, उस युग में हमारे ऋषियों ने सब मनुष्यों को एक समान बताया था । आप स्वामी और दास की बात पर इतना तूमार बाँधते हैं परन्तु वह तो प्रेम का सम्बन्ध था, पिता पुत्र का सम्बन्ध था । तब आप का यह श्रेणी संघर्ष कहाँ था जो आज संसार को अपनी आग में जलाये दे रहा है ?”

राष्ट्रीयजी ने भी उनका समर्थन किया—“हाँ हमारे ऋषियों ने तो मनुष्य मात्र को एक समान माना है । यह कोई आपके पश्चिमी समाजवाद की खूबी नहीं है । पश्चिमी यांत्रिक-सभ्यता ने हमें निर्बल और गुलाम ही बनाया है ? प्राचीनकाल में हम कितने उन्नत थे ?”

वैज्ञानिक जोर से हँस दिये और बोले—“यंत्रों ने आपको किस तरह

निर्बल बना दिया साहब ? क्या इसलिये कि पहले जंगली जानवर मनुष्यों को फाड़कर खा जा जाते थे, अब नहीं खा सकते । क्या इसलिये कि पहले नदी पार करने में आप डूब जाते थे अब सात समुद्र लाँघ जाते हैं । क्या इसलिये कि आप अब आकाश में उड़ सकते हैं । क्या इसलिये कि पहले कोई रोग होने पर ईश्वर की इच्छा मान कर विवश हो जाते थे और अब रोगों का इलाज हो जाता है । रही आपके ऋषियों की बात कि उन्होंने सब मनुष्यों

एक समान बताया था—उन्होंने ब्राह्मण का धर्म मार्ग बताना, क्षत्रिय का धर्म शासन करना और शूद्र और दास का धर्म सेवा करना ही तो बताया था । आप बताइये कि व्यवहार में क्या होता था ? दास और स्वामी को शासन और सेवा करने वाले को आप एक समान मान सकते हैं ? पूर्वजों ने मनुष्यों की समानता का उपदेश तो जरूर दिया था परन्तु उस समय दासों और मेवकों को मनुष्य ही नहीं माना जाता था ।”

सर्वोदयीजी ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि कामरेड उनसे पहले ही बोल पड़े—“रही बात स्वामी-दास के पिता-पुत्र के संबंध के पाखण्ड की, सो भैया जो आदमी मुर्गियों को खाने के लिये पालता है तो कुत्ते-बिल्ली से मुर्गी की रक्षा करता ही है । अपनी सामर्थ्य और समझ-बुझ से उन्हें अच्छा दाना भी देता है कि खूब मोटी हो जायें । रोग होने पर उनका इलाज भी करता है । कभी बेटा कह कर भी पुचकारता है लेकिन मुर्गियों का उपकार करने के लिये, सत्य और अहिंसा से मुर्गियों की उन्नति करने के लिये कोई मुर्गी पालता हो ऐसा अभी तक देखा-सुना नहीं गया । ऐसे ही दासों को बेटा बना कर खिलाने-पिलाने के लिये ही रक्खा जाता हो, यह समझ में नहीं आ-सकता । दासता की प्रथा के अन्त से मनुष्य-समाज का पतन हो गया है, जनता का अपने शासन के लिये राय देने का अधिकार माँगना मानवता का पतन है और प्रजा का बाप बनकर, राजा के ईश्वरीय अधिकार से प्रजा पर निरंकुश शासन करना, समाज के लिये कल्याणकारी था तो हम इस धोखे में आने से रहे ।”

कामरेड की इस उग्रता का उत्तर सर्वोदयीजी ने शांत और आत्मनुष्ट मुस्कराहट से दिया और बोले—“धोखा, मनुष्य को धोखा कौन दे सकता है ? मनुष्य स्वयं ही धोखे में पड़ता है । यह जड़ता की पूजा, समाज का बंत्रों का दास बन जाना, यंत्रों के लिये मनुष्य को बलिदान कर देना ही धोखा है । आवश्यकताओं को बढ़ाना, उनकी पूर्ति के लिये पागल हो जाना, अधिकारों

का लोभ, शक्ति प्राप्त करने की इच्छा, यह सब हिंसा की प्रवृत्ति है जो आवश्यकताओं को बढ़ाने, उनके लिये संघर्ष करने और यंत्रों की दासता से पैदा होती है। इससे मनुष्य की उन्नति नहीं, पतन ही हो रहा है।”

मार्क्सवादी सर्वोदयीजी को सम्बोधन कर बोले—“आपके विचार में आवश्यकता का न होना, यंत्रों में दूर रहना यदि शक्ति, समृद्धि और मनुष्यता के विकास का लक्षण है तो आप पशुता की ही पूजा करना चाहते हैं ! पशुओं की आवश्यकतायें बहुत कम होती हैं और यंत्रों का उपयोग तो वे करते ही नहीं !”

सर्वोदयीजी इस तर्क से परास्त होकर झेंपे नहीं, बोले — “अवश्य, अवश्य ! हिंसा और लोभ में फँसे मनुष्यों से पशु बहुत अच्छे हैं। वे आपस में एक दूसरे को धाड़-फाड़ तो नहीं करते। वे वासना के दास तो नहीं।”

मार्क्सवादी ने आगे बढ़ कर पूछा—“कौन कहता है पशुओं में हिंसा नहीं या लोभ नहीं ? पशु घास के एक तिनके के लिये लड़ मरते हैं, एक दूसरे को फाड़ कर खा जाते हैं। पशु संयम से अपने आप को वश नहीं करता। वह विवश होता है। पशु संतोष नहीं करता, पशु असमर्थ होता है। समझे आप ? आप किस पशु की सहन-शीलता और संतोष की प्रशंसा करते हैं और उसका अनुकरण करने की शिक्षा मनुष्यों को देते हैं ? क्या हम शेर, बाघ, भेड़िये और बाज का अनुकरण करें ? आप चाहते हैं कि सर्व-साधारण जनता गाय, बैल, गधे और कुत्ते का अनुकरण करे इसलिये कि वे आपके वश में रहते हैं। सर्व-साधारण जनता की समृद्ध होने की इच्छा और अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के यत्न की निन्दा, शासक श्रेणी के गुरु लोग इसीलिये करते हैं कि सर्व-साधारण जनता, समृद्धि को उनसे बंटाने न लगे। उनके बंधन से मुक्त होने की चेष्टा न करे ? स्वतन्त्रता का अर्थ है, अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूर्ण करने का स्वतन्त्र अवसर, वैज्ञानिक उन्नति और यंत्रों का उपयोग, उत्पादन के काम को सामूहिक रूप देकर, श्रमिक जनता को मालिक के मुकाबले में संगठित होने का अवसर देता है। इससे श्रमिक वर्ग की शक्ति मालिक श्रेणी से बढ़ जाती है। पशुता की, शान्ति और संतोष की प्रशंसा करके, यंत्रों के उपयोग से समाज के समृद्ध होने की चेष्टा की निन्दा करना, सर्व-साधारण को पशु के संतोष का अनुकरण करने की शिक्षा देना, शासक श्रेणी की धूर्तता है। यह श्रेणी मनुष्यता और शासन का अधिकार अपने हाथ में रखना चाहती है और सर्व-साधारण को विवश पशु बनाये रखना चाहती है।

यंत्रों का उपयोग उत्पादन के काम में मनुष्य को प्रकृति पर विजय पाने योग्य बना देता है। यंत्रों का उपयोग ही मनुष्यता का लक्षण है, यंत्रों का विकास ही मनुष्य की उन्नति है। आप मालिक वर्ग के स्वार्थ की रक्षा के लिये यंत्रों के उपयोग की निन्दा करते हैं, मनुष्य की उन्नति का विरोध करते हैं। आप चाहते हैं सर्व-साधारण जनता यंत्रों पर अश्रद्धा कर उन्हें शासक श्रेणी के हाथ में रहने दे और अपना संतोष अपनी आवश्यकताओं को घटा कर करे।”

सर्वोदयीजी को कामरेड की कड़ी भाषा अच्छी नहीं लगी। उँगली उठाकर ऊँचे स्वर में उन्होंने विरोध किया—“समाजवादी लोग स्वयं जनता को धोखा देते हैं, इसीलिये दूसरों को धोखेबाज कह कर गाली देना चाहते हैं। समाजवाद का सबसे बड़ा धोखा तो यह है कि सब लोग स्वतन्त्र और सुखी हो जायेंगे। बापू ने तो स्पष्ट कहा है—‘अधिकांश को तो गरीब ही रहना है इसलिये समाज में समानता लाने के लिये सभी को गरीबी की जिन्दगी बितानी चाहिये।’ बापू ने तो भूमि और कारोबार के मालिकों को कहा है कि तुम लोग अपनी सम्पत्ति, धन, दौलत को अपना माल मत समझो। तुम केवल इन चीजों के संरक्षक हो, धन सब जनता का है। बापू पर श्रेणी पक्षपात का दोष लगाने से बड़ा अन्याय क्या होगा ? वह तो दरिद्रनारायण का पुजारी था, सम्पत्ति का नहीं। उसने अपनी इच्छा से गरीबी का जीवन बिताया क्योंकि वह दरिद्रता का उपासक था।”

“यही तो सबसे बड़ा धोखा है” कामरेड फूट पड़े, “गाँधी जी अपनी इच्छा से गरीबी में रहे, यह उनका शौक था। शौक से गरीबी में रहने से गरीबी का दुख अनुभव नहीं हो सकता। यह कहना भी गलत है कि गाँधी जी गरीबी में रहे। उनकी कौन आवश्यकता अपूर्ण रहती थी ? देश की पूँजीपति श्रेणी के वकील होने की हैसियत से करोड़ों रुपये और सब साधन उनके हाथ में रहते थे। बताइये, गाँधी जी के गरीबी में रहने से गरीबों को क्या लाभ हुआ ? मुझे बीमार देखकर यदि आप भी बीमारी समेट लें तो मेरी क्या सहायता होगी ? इसका परिणाम यही होगा कि मैं भी बीमारी के इलाज की आशा न करूँ ! सोचूँ कि इतना बड़ा आदमी अपनी इच्छा से बीमार हो गया है, तो मेरे बीमार होने में क्या अन्याय है ? मैं संतोष कर लूँ। गाँधी जी ने जो बात की, अपनी श्रेणी अर्थात् मालिक श्रेणी के लाभ की ही की। उनकी नैतिकता का आधार ही मालिक श्रेणी के अधिकार की रक्षा था। इसी कारण मालिक श्रेणी ने गाँधी जी के लिये वे सब साधन प्रस्तुत

किये, जिनसे वे सर्व-साधारण जनता को अपना अनुगामी बना सकते थे ।

जब गांधी जी ने देखा कि जनता को साम्यवाद और कम्युनिज्म की ओर आकर्षण हो रहा है, तो उन्होंने अपने आप को सबसे बड़ा साम्यवादी ओर कम्युनिस्ट एलान कर दिया कि कम्युनिज्म ही चाहते हो, तो भी मेरी ही बात मानो ! गांधी जी ने जमींदारों और पूँजीपतियों को अपनी इच्छा से सारे देश की सम्पत्ति के संरक्षक बन जाने का अधिकार दे दिया । यह सरामर जनता की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश है कि पैदावार के साधनों का स्वामित्व जमींदारों और पूँजीपतियों के हाथ में रहते हुये भी जनता शोषण से बच सकती है । अब तक शोषक लोग शोषितों को शस्त्र की शक्ति से वश में रखते आये हैं । इतिहास इस बात का साक्षी है । परन्तु समाज में आ गये आर्थिक परिवर्तनों से पैदावार करने वाली शोषित श्रेणी का महत्व और शक्ति समाज में बढ़ती जा रही है । शोषित श्रेणी को अब शस्त्रों की शक्ति से दबाये रखना सम्भव नहीं है इसलिये गांधीवाद मालिक श्रेणी को शोषितों का बापू बना कर, पैदावार के साधनों को अपने हाथ में रखने का नैतिक अधिकार उन्हें देना चाहना है और इसे मालिक श्रेणी का त्याग और सेवा-भाव बताता है ! ”

“गांधीवाद है क्या ?” मार्क्सवादो बीच में बोल उठे, “ईश्वर की प्रेरणा और धर्म की दुहाई देकर, मालिक श्रेणी के अधिकारों की रक्षा का यत्न ही गांधीवाद है । यंत्रों के विकास का विरोध गांधी जी ने इसलिये किया कि औद्योगीकरण से सर्वहारा मजदूर वर्ग की संख्या बढ़ती है, उन्हें संगठित होने का अवसर मिलता है, उनमें अपनी श्रेणी के हित की चेतना पैदा होती है । यह बात मालिक श्रेणी के हित के विरुद्ध है । गांधी जी मालिक श्रेणी के हित और उनके अधिकार की रक्षा के लिये मानव-समाज के विकास को रोकने के लिये तैयार थे । यंत्रों के विकास के अभाव में, जनता में अधिकांश को भूखा और नंगा रखने के लिये वे तैयार थे । इसीलिये यह सबसे बड़ा प्रपंच था कि अधिकांश को तो गरीब ही रहना है, सब लोग गरीबी में रहें । जब मनुष्य समाज के पास, औद्योगिक विकास द्वारा सम्पूर्ण समाज की आवश्यकतायें पूर्ण करने के साधन हैं, तो सब लोग गरीब क्यों रहें ?

“आप देखते हैं, जिन देशों में यांत्रिक विकास हुआ है, वहाँ के सर्व-साधारण लोगों की अवस्था उन देशों के लोगों से कहीं अधिक अच्छी है, जहाँ यांत्रिक विकास नहीं हुआ । हम स्वयं देखते हैं कि यंत्रों के विकास से हमारे देश में भी अनेक वस्तुयें, जो पहले सर्व-साधारण के लिये दुर्लभ थीं, सुलभ हो गयीं हैं ।

उदाहरणतः आवश्यक जल, रात के समय रोशनी, यात्रा के साधन, औषधियाँ और कपड़ा भी पहले की अपेक्षा अब कहीं अधिक मात्रा में मिल सकता है। औद्योगिक ढंग से की जाने वाली पैदावार आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था में मालिक का मुनाफा पैदावार की मात्रा निश्चित करता है। यदि पैदावार का उद्देश्य जनता की आवश्यकतायें पूरी करना ही हो तो पैदावार बहुत बढ़ जायगी। गाँधी जी का उपदेश—‘अधिकांश को तो गरीब ही रहना है’ तब गलत हो जायगा लेकिन गांधीवाद जनता की आवश्यकता पूर्ति नहीं चाहता। वह चाहता है, मालिक के मुनाफे के अधिकार की रक्षा ! वह मालिक को उपदेश देता है कि अपने मित्कियत के अधिकार की रक्षा के लिये कुर्बानी करो, गरीबी से रहो। गरीबों में अपने उदाहरण से सुख और समृद्धि से रहने की इच्छा न पैदा होने दो।”

सर्वोदयोजी फिर बोले—“यह आप के मन में यंत्रों के विकास और पश्चिमी संस्कृति और नैतिकता के प्रभाव से पैदा हुई हिंसा-वृत्ति का परिणाम है कि आप मालिक लोगों में कोई शुभ-कामना मानने के लिये तैयार ही नहीं। भूमि और कारोबार के मालिक, ईश्वर के विधान से हमारे आर्थिक संगठन के संरक्षक बन कर पैदा हुये हैं। उनका कर्तव्य है कि अपने लिये निर्धारित कार्य को पूरा करें। हमारी वर्ण-व्यवस्था एक आर्थिक संगठन है। आप यह कैसे कह सकते हैं कि मालिक शोषण करने या मुनाफा कमाने के लिये ही कारोबार करते हैं। हमारे यहाँ तो जनक जैसे राजा त्याग का आदर्श कायम कर गये हैं। वे केवल दान और प्रजा पालन के लिये ही धन संचय करते थे। हमारी संस्कृति में धन और जड़ की पूजा का आदर्श रहा ही नहीं। हमने इसे माया और भ्रम ही समझा है। जैसे मजदूर किमान अपनी जीविका के लिये कोई काम करता है, उसी प्रकार उद्योग-धन्धे चलाने वाला कारोबारी आदमी भी अपना कर्तव्य पूरा करता है। उसे भी अपना काम करने की उतनी ही नैतिक और कानूनी स्वतन्त्रता होनी चाहिये जितनी कि किसान मजदूर को। प्रश्न तो नैतिकता, आदर्श और संस्कृति का है। हमें अपना आदर्श जड़वाद, सांसारिक माया के लिये मंघर्ष करने वाला रावणराज्य नहीं बनाना। हमारा आदर्श शाश्वत सत्य, अहिंसा का राम-राज्य है जो जीवन की पूर्णता, मृत्यु के बाद उस लोक में भगवान की प्राप्ति में देखता है।”

वैज्ञानिक बोले—“सर्वोदयी जी मृत्यु के पश्चात् दूसरा लोक हो या न भी हो। आप भी उस लोक को देख कर नहीं आये हैं। हम अपना आदर्श

उस लोक की प्राप्ति के बजाय पहले इस लोक में ही सफलता और सामर्थ्य क्यों न समझें ?”

“परन्तु इस लोक को भी तो आप नैतिकता, सत्य और अहिंसा के आदर्श ने गिर कर नहीं पा सकते” सर्वोदयीजी ने चेतावनी दी, “उसके बिना तो समाज में अव्यवस्था और हिंसा ही हिंसा हो जायगी।”

“नैतिकता के हम भी कायल हैं” मार्क्सवादी ने अपने सीने पर हाथ रख कर स्वीकार किया, “परन्तु नैतिकता है क्या ? नैतिकता है समाज की परिस्थितियों के अनुकूल ऐसे नियम और व्यवस्था, जो पूरे समाज को जीवित रहने का अवसर दे सके और सभी व्यक्तियों को विकास के लिये अधिक से अधिक और समान अवसर दे सके।”

कुछ देर पहले श्रद्धासाहित्यिक भी आ पहुँचे थे। वे मार्क्सवादी की नैतिकता की व्याख्या के प्रति विरोध में सिर हिलाकर बोले — “नैतिकता और जीवन के आदर्श को आप समाज की आर्थिक परिस्थितियों से नहीं बाँध सकते। समाज की परिस्थितियाँ बदलने वाली चीज हैं परन्तु नैतिकता और जीवन का आदर्श एक स्थिर, शाश्वत वस्तु है जिससे व्यक्ति और समाज सभी तरह की परिस्थितियों में प्रेरणा ग्रहण करता है। वह मनुष्य की अन्तर चेतना से उत्पन्न होती है। नैतिकता और सत्य को आप नित्य नहीं बदल सकते।”

“नित्य तो नहीं परन्तु समाज की परिस्थितियाँ बदलने पर नैतिकता, सत्य और अहिंसा की धारणा भी बदलती रही है और समाज के भौतिक साधनों परिस्थितियों और आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन आने पर नैतिकता को निश्चय ही बदलना चाहिये” मार्क्सवादी ने एक हाथ का घूँसा दूसरे हाथ की हथेली पर मार कर घोषणा की, “नैतिकता तथा सत्य और अहिंसा के सम्बन्ध में सभी श्रेणियों और समाजों की धारणा अपने ज्ञान, विश्वास और अपने हितों की रक्षा के आधार पर होती है। हमारे विचार और हमारी धारणायें हमारे अस्तित्व की स्थिति से भिन्न और स्वतन्त्र नहीं हो सकते। हमारा ज्ञान बढ़ने और जीवन की परिस्थितियाँ बदलने पर हमारे विचार और नैतिकता कैसे नहीं बदलेगी ?”

“बस यही तो भौतिकवादी मार्क्सवादियों की सबसे बड़ी भूल है” सर्वोदयीजी ने उदारता से मुस्करा कर सुझाया। अपना हाथ फैलाकर वे बोले, “मेरे भाई, तुम लोग नैतिकता, न्याय और आचार को अपने भौतिक ज्ञान और आर्थिक विचारों से निश्चित करते हो, जो पल-पल पर बदलते हैं” उन्होंने

चुटकी बजाकर भौतिक परिस्थितियों की क्षणिकता का संकेत किया और बोले, “भौतिकता है क्या ? केवल अपना स्वार्थ ! इसलिये आपकी सत्य और न्याय की धारणा सदा सीमित रहेगी । आप व्यापक और स्थायी सत्य तक कभी पहुँच नहीं सकते । व्यापक और शाश्वत सत्य परमार्थ और अहिंसा के आधार पर ही पाया जा सकता है । उसका मूल है सदा एक रस ईश्वर की प्रेरणा ।”

“ईश्वर को आप बीच में न घसीटें तो अच्छा हो !” मार्क्सवादी ने हाथ उठा कर चेतावनी दी, “कारण यह कि आप कहेंगे कि आपका मत ईश्वर की आज्ञा है और हम ईश्वर से पूछ न पायेंगे कि उनकी आज्ञा क्या है ? न्याय का यह कायदा है कि गवाही ऐसी होनी चाहिये जिसकी प्रामाणिकता की परख हो सके ।

जिज्ञासु, भद्रपुरुष और शुद्धसाहित्यिक के होठों पर मुस्कराहट देखकर कामरेड झट से बोल उठे—“यह तो शोषकों का पुराना ढोंग है कि जिस बात के लिये तर्क न हो उसके लिये अज्ञेय ईश्वर का भय दिखा दिया जाय । गांधी जी क्या करते थे ? जिस बात को तर्क से साबित नहीं कर सके, कह दिया—मुझे ईश्वर की ऐसी ही प्रेरणा है । जिस बात के लिये दलील नहीं दे सके, उमे मनवाने के लिये उपवास कर बैठे । गांधी जी ईश्वर की प्रेरणा से हिन्दू-मुस्लिम दंगों के विरोध में उपवास करते रहे और ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि दंगे बढ़ते-बढ़ते यह नौबत आयी कि देश हिन्दुस्तान, पाकिस्तान में बँट गया । जिन्ना कहते रहे कि अल्लाह का हुक्म है, पाकिस्तान बनेगा । हुक्म चल गया अंग्रेज का ।”

“देखिये साहब” इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले, “हमारी समस्या आर्थिक और राजनैतिक है । इसमें ईश्वर और मजहब को लाना ठीक नहीं । हमें मजदूर-किसान मात्र को एक उद्देश्य और एक कार्यक्रम के लिये एक साथ लेकर चलना है । हम संसार भर के मेहनतकशों की एकता और उनके एक उद्देश्य में विश्वास रखते हैं । ईश्वर और मजहब करा देते हैं झगड़ा । क्योंकि इस विषय में लोगों की आस्था और कल्पना भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी है । आप ही सोचिये अंग्रेज, सरकार के विरुद्ध इस देश की जनता की लड़ाई साझी थी, जनता की आर्थिक और राजनैतिक माँगें साझी थीं । पहले तो अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों में पक्षपात के टुकड़े बाँट कर उन्हें लड़ाने की कोशिश की । फिर गांधी जी ने देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक

मांगों को धार्मिक और आध्यात्मिक रूप देकर मजहब को बीच में ला खड़ा किया। गांधीजी ने कहा, राजनीति को ईश्वर विश्वास और मजहब के आधार पर चलाओ। मजहब और ईश्वर विश्वास हिन्दू, मुसलमान का अलग-अलग और परस्पर-विरोधी था। परिणाम यह हुआ कि जनता का साझा मोर्चा मजहबी टुकड़ों में बँट गया। गांधी जी ने हिन्दू आदर्श पर रामराज की पुकार, हिन्दुओं को बहलाने के लिये उठाई, तो दूसरी ओर से इस्लामीसलतनत और पाकिस्तान की पुकार उठी !”

“यह क्या, आप क्या कह रहे हैं ?” उत्तेजना में अपने आसन की मुद्रा बदल कर सर्वोदयी जी ने पुकारा, “आपका मतलब है कि बापू ने हिन्दू-मुसलमानों को लड़ाया ?”

इतिहासज्ञ सर्वोदयी जी की उत्तेजना से परास्त नहीं हुये और बोले—
“हमने कहा न कि इस देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगें साझी होने पर भी साम्प्रदायिक विश्वास के नाते, जनता के दो भागों में पराम्परा-गत विरोध चला आता है। राजनैतिक और आर्थिक मांगों को साम्प्रदायिकता का रंग देने का परिणाम और क्या हो सकता था ? इस पर गांधी जी बहुत जोर देकर यह भी कहते थे कि मैं हिन्दू पहले हूँ और हिन्दुस्तानी बाद में। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे लिये अपनी आत्मा की मुक्ति का महत्व देश की मुक्ति से अधिक है। गांधी जी ने हिन्दूपन का एलान किया तो मुहम्मद अली क्या कम थे ? उन्होंने एलान किया—‘मेरे लिये सबसे पहले इस्लाम है ! अदना से अदना मुसलमान मेरी नजर में गांधी से अधिक पवित्र है। हो गयी लड़ाई शुरू ! आप ही बताइये, मुसलमान हिन्दुत्व के आदर्श को और हिन्दुओं के मुक्ति के आदर्श को पूरा करने के लिये कांग्रेस के पीछे कैसे लगे रहते ?

“कांग्रेस एक राजनैतिक संस्था थी। उसे हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता का रंग गांधी जी ने दिया। मुसलमानों ने यह अनुभव किया कि कांग्रेस हिन्दू संस्था है, कांग्रेस की स्वतंत्रता का आदर्श हिन्दू-राज का आदर्श है और वे कांग्रेस से निकल भागे। कांग्रेस वास्तव में हिन्दुओं की ही संस्था रह गयी। मुसलमानों ने कांग्रेस का विरोध करना और अपनी अलग, हिन्दू-विरोध आज़ादी का आन्दोलन चलाना आरम्भ कर दिया, जिसका परिणाम हुआ देश का बटवारा। गांधी जी के हरिजन उद्धार आन्दोलन का भी यही प्रभाव हुआ। दलित जातियों की वास्तविक समस्या है उनकी अर्थिक पराधीनता।

गांधी जी ने दलित जातियों की आर्थिक समस्या को नहीं उठाया; उठाया उनके मंदिर प्रवेश और उन्हें कुओं पर चढ़ाने की समस्या को। हरिजन कुछ मन्दिरों में गये या न गये, इसमें उनका क्या भला हुआ? परन्तु यह अवश्य हुआ कि कट्टर मुसलिम जनता ने समझ लिया कि कांग्रेस हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन है और उसका विरोध करने के लिये तब 'लीग' का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। परिणाम हुआ, हिन्दू-मुसलिम विरोध की बढ़ती।”

सब लोगों को इतिहासज्ञ की बात ध्यान और विस्मय से सुनते देखकर सर्वोदयी जी ने उत्तेजित स्वर में पुकारा—“बापू ने साम्प्रदायिक विरोध बढ़ाया; यह आप कैसे कह सकते हैं? बापू ने तो सम्प्रदायिक दंगे मिटाने के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी। क्या आप देहली की दीवार के समीप साम्प्रदायिक दंगे शान्त करने के लिये, बापू के ऐतिहासिक उपवास व्रत को भूल गये?”

“नहीं भूल नहीं गये, वह भी याद है” इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया, “गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिक भेद को बढ़ाने के कारण पैदा किये और फिर अपने आध्यात्मिक प्रभाव से उन्हें शान्त करने का भी यत्न किया। पहली बात का प्रभाव तो हिन्दू-मुसलमानों के परम्परागत संस्कारों के कारण बहुत जल्दी हो गया। उनकी आध्यात्मिकता का प्रभाव उतना नहीं हुआ क्योंकि मुसलमानों की साम्प्रदायिक धारणा, गांधी जी की आध्यात्मिकता को स्वीकार न कर सकती थी। गांधी जी ने अपने आपको हिन्दू एलान करके भी अपनी निष्पक्षता प्रमाणित करने का बहुत यत्न किया। उन्होंने यत्न किया कि मुसलमान भी उन्हें अपना धार्मिक गुरु मान लें परन्तु मुसलमानों की साम्प्रदायिक संकीर्णता ने यह स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि गांधी जी के खास मित्र मौलाना मुहम्मदअली ही कह गये कि अदना से अदना मुसलमान भी मेरे नजदीक गांधी से बड़ा है। गांधी जी ने साम्प्रदायिक भेद के कारण तो पैदा कर दिये परन्तु उन कारणों को दूर किये बिना, अपने प्राण दे देने की धौंस देकर, साम्प्रदायिक द्वेष को दबाना भी चाहा। साम्प्रदायिक भेद इस तरह दूर नहीं हो सकते थे क्योंकि यह युक्ति नहीं, दबाव था। गांधी जी ने मुसलमानों के प्रति अपनी उदारता दिखाकर उनका हृदय परिवर्तन करना चाहा। संकीर्ण विचार हिन्दुओं ने समझा कि गांधी जी मुसलमानों को अपना भक्त बनाने के लिये हिन्दू-हितों को न्योछावर कर रहे हैं। परिणाम में मस्लिम-विरोधी हिन्दू-हित और हिन्दू-राष्ट्र के आन्दोलन को उत्साह मिला।

“गांधी जी की हत्या देश के लिये अत्यन्त खेद और कलंक की बात है परन्तु वह हत्या इस बात का प्रमाण थी कि साम्प्रदायिक एकता के लिये गांधी जी के उपवास व्यर्थ गये। उनकी हत्या हिन्दू-मुसलिम विरोधों और वैमनस्य की चरम सीमा का दिग्दर्शन था। हिन्दू-मुसलमानों का साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर करने का उपाय, शोषित हिन्दू-मुसलमानों में आर्थिक मांगों पर श्रेणो के आधार पर एकता है। ऐसी एकता गांधी जी को मंजूर नहीं थी क्योंकि यह एकता शोषित हिन्दू-मुसलमानों में उनका शोषण करने वाली, उनको साझो शत्रु पूंजीपति श्रेणो के विरुद्ध, शोषक व्यवस्था को बदलने के लिये ही हो सकती थी। गांधी जी जनता के अपने हित के ख्याल से नहीं, अपने हुक्म से जनता की एकता कराना चाहते थे। उसमें जितनी सफलता हुई, उससे अधिक की सम्भावना हो ही नहीं सकती थी। गोडसे द्वारा की गयी गांधी जी की मूर्खतापूर्ण हिंसा, एक मूर्खता द्वारा दूसरी मूर्खता का उपाय करने की हिमाकत ही थी।”

सर्वोदयो जी विरोध में ‘वाक आउट’ करने के लिये खड़े हो गये परन्तु उन्हें बैठा कर प्रसंग को दूसरे ढंग से चलाया गया :—

“आप नाराज न हों, हम नैतिकता, न्याय और अन्याय के झगड़े में ईश्वर को घसोटना इसलिये उचित नहीं समझते” मार्क्सवादी बोले, “क्योंकि ईश्वर की प्रेरणा को मनुष्य अपनी बुद्धि और विश्वास से ही ग्रहण करता है। जैसे आपका विश्वास और बुद्धि होगी, आप ईश्वर से वैसी ही प्रेरणा पायेंगे। आप नित्य जीवन में यही बात देखते हैं। ईश्वरवादी के विश्वास के अनुसार, ईश्वर को न मानने वाले भी ईश्वर के विधान से स्वतंत्र नहीं हैं। नर-मांस खाने वाले, नंगे रहने वाले जंगली लोगों को, चांगकाई शेक और चीन के कम्युनिस्टों को, हिटलर और स्टैलिन को, जिन्ना और गांधी को ईश्वर भिन्न-भिन्न प्रेरणायें क्यों देता रहा है। जिसका जैसा विश्वास था, उसने वैसी प्रेरणा प्राप्त कर ली। प्रेरणा को आपका विश्वास और बुद्धि ही ग्रहण करती है। आप अपने निर्णय को ईश्वर की आज्ञा का नाम देते हैं। यह ईश्वर की शक्ति को अपनी इच्छा से जोड़ लेने का उपाय है।”

“तो फिर नैतिकता, सत्य और न्याय की कोई धारणा शाश्वत नहीं।” निराशा से जिज्ञासु बोले, “वह सदा बदलती रहेगी ? सदा द्वन्द्व चलता रहेगा ?”

“हाँ, सदा द्वन्द्व ही चलता रहेगा !” सर्वोदयो जी ने उँगली उठा कर

सुझाया, “द्वन्द्व की निरन्तर हिंसा से हमें ईश्वर का विश्वास और प्रेरणा ही बचा सकती है। मानेंगे या नहीं आप ?”

“हम यह मानेंगे कि समय-समय पर द्वन्द्व होता रहा है और सामाजिक परिस्थितियों या समाज की आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल द्वन्द्व का समाधान भी होता रहा है।”.....इतिहासज्ञ कह रहे थे।

मार्क्सवादी ने उन्हें टोक दिया--“समाज की व्यवस्था में द्वन्द्व का अर्थ क्या है ? द्वन्द्व एक ऐतिहासिक क्रम है। इसका अर्थ है कि समाज अपने जीवन निर्वाह के साधनों के अनुकूल आवश्यक पदार्थों की पैदावार करने और समाज में उनका बँटवारा करने की व्यवस्था बनाता है। जब जीवन निर्वाह या पैदावार के नये-नये साधन समाज में पैदा हो जाते हैं तो पैदावार के पुराने क्रम में और बँटवारे के क्रम में भी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है। परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होना और इसके लिये प्रयत्न किया जाना ही व्यवस्था के पुराने चले आये क्रम में द्वन्द्व पैदा हो जाना है। ऐसा द्वन्द्व सभी पदार्थों और स्थितियों में होता है। यह द्वन्द्व उनके विकास का स्वाभाविक गुण और साधन है।

“पदार्थों और परिस्थितियों को दो तरह देखा या पहचाना जाता है, एक उनके परिमाण से और दूसरे उनके गुण से। वस्तुओं के परिमाण और गुण में परस्पर सम्बन्ध रहता है। परिमाण और गुण एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। यदि किसी वस्तु या जीव का परिमाण या शरीर बढ़ता जायगा तो एक सीमा पर उसका गुण बदल जायगा। इसी प्रकार किसी वस्तु या जीव में कोई गुण बढ़ता जायगा, तो एक सीमा पर यह गुण उस वस्तु के परिमाण या जीव के शरीर में भी परिवर्तन कर देगा। परिमाण घटने-बढ़ने से गुण में और गुण घटने-बढ़ने से परिमाण में भी परिवर्तन हो जाता है। यह बात वस्तुओं और जीवों के ही बारे में ही नहीं, समाज और समूह के बारे में, उनकी व्यवस्था और विधान के बारे में भी सत्य है। समाज की भौतिक और आर्थिक परिस्थितियों में ऐसे द्वन्द्वों से ही नये विधान अथवा नयी नैतिकता, सत्य और न्याय का भी विकास होता है। संक्षेप में यही तो मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। सम्पूर्ण इतिहास इसका साक्षी है। मनुष्य-समाज के इतिहास में इसी नियम के अनुसार अनेक व्यवस्थायें आयी हैं। उन व्यवस्थाओं से समाज का जितना विकास सम्भव था वह हो चुकने पर, द्वन्द्व द्वारा व्यवस्था में फिर परिवर्तन होता गया है।”

“द्वन्द्व का अर्थ है हिंसा । हिंसा से कभी सत्य और न्याय का विकास हो सकता है ?” सर्वोदयी जी ने घोर विरोध किया, “असम्भव ! द्वन्द्व और हिंसा से हिंसा और अन्याय ही उत्पन्न होगा । इतिहास हमें यही बताता है !”

“इतिहास आपको क्या बताता है ?” भवें सिकोड़ कर इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया और बोले, “मुनिये, मनु महाराज के समय शूद्रों, अछूतों और स्त्रियों की समस्या थी इसीलिये उन्होंने इस विषय में विधान बनाया । मनु महाराज का परिचय ईश्वर से उतना ही रहा होगा जितना गांधी जी का था । मनु महाराज को ईश्वर की प्रेरणा यह थी कि समाज के कल्याण के लिये सेवकों, शूद्रों, दासों और स्त्रियों को अपने मालिकों के आधीन रहना चाहिये । मनु महाराज को विधान बनाने की आवश्यकता इसीलिये अनुभव हुई कि समाज में द्वन्द्व था । मनु महाराज ने उस द्वन्द्व का समाधान मालिकों के लिये, दासों और स्त्रियों की श्रमशक्ति को आवश्यक समझ कर, मालिकों की आर्थिक प्रभुता के आधार पर कर दिया । मनु महाराज का यह समाधान बहुत समय तक चला परन्तु यह विधान शाश्वत नहीं हो सका ।

“उत्पादन के साधनों में विकास और परिवर्तन हो जाने पर दास श्रेणी मालिक की सम्पत्ति न रह कर सामन्तों की रैय्यत बन गयी । उसके बाद और परिवर्तन आने पर रैय्यत मजदूरी और तनखाह लेकर अपना श्रम बेचने वाली श्रेणी बन गयी । समाज की आर्थिक स्थिति में द्वन्द्व आकर, दास प्रथा मिट जाने और स्वतन्त्र मजदूर श्रेणी पैदा हो जाने को, आप द्वन्द्व में हिंसा पैदा होना कहेंगे ? इसी प्रकार मनु महाराज ने अपने समय की आर्थिक आवश्यकता के कारण शूद्रों तथा स्त्रियों की जो अधिकारहीन स्थिति निश्चय कर दी थी, वह हजारों वर्षों तक चलने पर भी शाश्वत नहीं हो सकी । समाज में उत्पन्न हो जाने वाले आर्थिक तथा दूसरे द्वन्द्वों ने शूद्रों (हरिजनों) और स्त्रियों की स्थिति वैसी नहीं रहने दी, जैसी मनु महाराज ने निश्चित की थी । शूद्रों और विधवा हिन्दू स्त्रियों को अपने समाज में स्थान देने के लिये तैयार मुस्लिम संस्कृति के भारत में आ जाने पर और अछूतों को अपना राजनैतिक सहायक बनाना चाहने वाले अंग्रेजों की नीति से भी द्वन्द्व पैदा हुये । उन द्वन्द्वों का प्रभाव हिन्दू-समाज की नैतिकता और शूद्रों की स्थिति पर पड़ा है या नहीं ? भगवान ने मनु महाराज को प्रेरणा दी थी कि शूद्रों को अपने आधीन रखने के लिये, उन्हें शिक्षा से उन्नति कर सकने या उनमें महत्वाकांक्षा पैदा होने का अवसर मत दो । भगवान ने शूद्रों को मुसलमानों और अंग्रेजों का सहायक बनते देख

कर गाँधी जी को प्रेरणा दी कि शूद्रों को बहलाने के लिये मन्दिरों के द्वार खोल दो। कहिये, समय देखकर भगवान की राय बदल गयी या इससे पहले उनकी प्रेरणा समझने वालों की भूल थी ?”

मार्क्सवादी बोल उठे—“आप यह तो मानेंगे कि नैतिकता और आचार के नियमों की आवश्यकता मनुष्यों के परस्पर-सम्बन्धों को नियमित करने के लिये ही होती है। हमारे पूर्वजों ने धर्म और नैतिकता के जो दस लक्षण धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, विद्या, सत्य और अक्रोध बताये हैं वे सब मनुष्यों के परस्पर-व्यवहार के बारे में ही लागू होते हैं।”

मार्क्सवादी को कुछ और याद आ गया; उन्होंने बात बदल दी—“आप यह बताइये, यदि कोई मनुष्य ऐसे द्वीप में रहता हो, जहाँ उसे दूसरे मनुष्यों से कभी सम्पर्क न पड़ता हो और न सम्पर्क पड़ने की सम्भावना ही, तो इस व्यक्ति के लिये आप नैतिक आदर्श कैसे निश्चय करेंगे ? उसके लिये तो नैतिकता की आवश्यकता और मूल्य कुछ नहीं है न ?”

“उसके लिये नैतिकता के प्रकट होने का अवसर नहीं है” शुद्धसाहित्यिक जी ने उत्तर दिया।

“यही सही” मार्क्सवादी ने स्वीकार किया, “परिणाम यह निकला कि नैतिकता समाज में मनुष्यों के परस्पर-सम्बन्धों की सुव्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है” उन्हें निरुत्तर देखकर मार्क्सवादी दूसरी उगली उठाकर बोले, “दूसरी बात, जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को परस्पर सहायता से उत्पन्न करने और समाज में उन्हें समुचित रूप में बाँटने के प्रयोजन से ही मनुष्य परस्पर-सम्पर्क में आते हैं। समाज के जीवित रह सकने के लिये आवश्यक, इस आर्थिक व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाने के लिये मनुष्यों के आपसी व्यवहार किस प्रकार के हों, इसी के लिये नैतिकता और व्यवस्था की जरूरत होती है और यही नैतिकता का आधार है। यदि आवश्यक पदार्थों को पैदा करने के ढंग बदल जायेंगे और उनके बटवारे के ढंग में भी परिवर्तन आजायगा, तो नैतिकता को भी बदलना ही होगा। आप दामों का प्रयोग करने वाले और मशीनों का प्रयोग करने वाले समाजों की नैतिकता में स्पष्ट भेद देखते हैं; मानते हैं या नहीं आप ?”

“आपकी बात का अभिप्राय तो होता है” भद्र पुरुष बोले, “कि नैतिकता, सत्य और न्याय कोई स्वतः सिद्ध शाश्वत वस्तु नहीं है। जिस समय समाज की जैसी परिस्थिति और आवश्यकता हो नैतिकता को वैसे ही ढाल लिया जाये !”

कामरेड टोक बैठे—“इसका यह भी अर्थ है कि समाज में जो श्रेणी पैदावार के साधनों की स्वामी होगी वही श्रेणी समाज की नैतिकता का भी निश्चय करेगी।”

सर्वोदयीजी निराशा प्रकट करने के लिये दोनों हाथ फैलाकर दुहाई देते हुये बोले—“तो सब कुछ क्षुद्र स्वार्थी मनुष्य के हाथ की ही बात हो गयी। सब कुछ मनुष्य के स्वार्थ का ही खेल हो गया ?”

वैज्ञानिक ने विस्मय प्रकट करने के लिये ठोड़ी उठाकर और आंखें फैलाकर पूछा—“इतने निराश क्यों हो गये सर्वोदयीजी ? आप समाज को ईश्वर प्रेरणा की नकेल में काबू करके यह नकेल अपने ही हाथ में रखना क्यों आवश्यक समझते हैं ? मनुष्य की स्वतन्त्रता से आप को निराशा क्यों होती है ? आप की यह ईश्वर का प्रतिनिधि होने के दावे में बनायी गयी नैतिकता रामराज की नैतिकता है। दूसरी ओर है मेहनत करने वाली श्रेणी द्वारा, सबके लिये न्याय और समान अवसर की रक्षा की नैतिकता।”

“ऐतिहासिक तथ्य तो यही है” इतिहासिज्ञ ने विवशता प्रकट करते हुए स्वीकार किया, “कि नैतिकता मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों से ही पैदा होती है, उन्हीं के लिये उसकी जरूरत है तो मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों से ही उसका निर्णय भी होगा; सदा होता भी रहा है। यह आप मनु महाराज के समय और अपने समय की तुलना में देखते हैं। ऐसे ही पूंजीवादी व्यवस्था की नैतिकता मूनाफा कमाकर, बटोरी हुई सम्पत्ति से दूसरों के श्रम का फल छीन सकने के अवसर के लिये, उपयोगी नियमों के आधार पर बनी है। समाजवादी समाज में सम्पत्ति और पैदावार के बटवारे की व्यवस्था दूसरे ढंग से होने से नैतिकता में भी परिवर्तन हो गया है।”

“मूनाफा कमाकर बटोरी हुई सम्पत्ति से दूसरों के श्रम का फल छीनने के अवसर की नैतिकता से आपका अभिप्राय क्या है ?” सर्वोदयीजी ने प्रश्न किया, “नैतिकता का आधार तो अहिंसा है।”

“आपका कहना ठीक है कि नैतिकता का आधार अहिंसा है” मार्क्सवादी ने स्वीकार किया, “परन्तु हिंसा क्या है ? हिंसा का मतलब है दूसरे को दुख देना। कोई व्यक्ति दुख और हिंसा तभी अनुभव करता है जब उसके शरीर या हित पर चोट आती है। कोई व्यक्ति दूसरे पर तभी आघात करता है जब अपनी रक्षा करना चाहता है या अपना स्वार्थ पूरा करना चाहता है। स्वार्थ क्या है ? जीवित रह सकने के लिये अवसर और इसके लिये आवश्यक

साधनों की इच्छा । जीवन के लिये उपयोगी पदार्थ और इन पदार्थों को पैदा करने के साधन ही सम्पत्ति हैं । पूँजीवादी नैतिकता में किसी दूसरे की सम्पत्ति का एक पैसा उठा लेना अनैतिक है और हिंसा है परन्तु मुनाफे के नाम पर एक हज़ार आदमियों की मेहनत का फल हड़प लेना, पूँजीवादी नैतिकता में न हिंसा है न अपराध है ।”

“मेहनत और पैसे में अन्तर क्या है ?” कामरेड बोले, “पैसा मेहनत का ठोस रूप होता है । यदि किसी को बिना कुछ दिये पैसा ले लेना अन्याय है तो किसी की मेहनत का पूरा फल या दाम न देना भी अन्याय है ।”

“नहीं, पूँजीवादी नैतिकता का न्याय इसमें भेद करता है ” वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, “यों तो मेहनत ही पैसा है परन्तु मेहनत और पैसे में भेद है । मेहनत की शक्ति रहती है मजदूर के शरीर में और पैसा रहता है पूँजीपति की तिजोरी में । पूँजीवाद की नैतिकता मजदूर की श्रम-शक्ति से लाभ उठाने के लिये सम्पत्ति की मालिक श्रेणी द्वारा बनाई गयी नैतिकता है । इसलिये यह नैतिकता पूँजीपति के ही स्वार्थ की रक्षा करती है । न्याय के लिये कानून निश्चित करने का अवसर श्रमिक श्रेणी को नहीं देती” विशेष रूप से सर्वोदयी जी को सुना कर उन्होंने कहा, “मजदूर को कठिनाता से निर्वाह-मात्र के लायक मजदूरी देकर, उसकी मेहनत से पैदा हुआ बहुत अधिक माल हड़प लेना ठीक ऐसा है, जैसे पशु को आठ आने का भूसा खिला कर दो रुपये का दूध दोह लेना । गाँधीजी पशुओं का दूध पीना तो अहिंसा के आदर्श से गिरना समझते थे परन्तु मजदूर के श्रम से मुनाफा उठाना उन्हें अन्याय नहीं जंचा, यह है राम-राज की नैतिकता ।

“रामराजी नैतिकता में पूँजीपति श्रेणी मेहनत करने वाली श्रेणी के श्रम के फल से मुनाफा कमा सकना उसी प्रकार नैतिक समझती है जैसे मनुष्य पशुओं के श्रम से लाभ उठाना अपना मनुष्यत्व का अधिकार समझता है । पशु के श्रम और दूध से लाभ उठाने का अधिकार, मनुष्य पशु को अपने वश में रखने के कारण पाता है । पूँजीवाद की रामराजी नैतिकता मेहनत करने वाली श्रेणी को अपने वश में रखने के लिये, मजदूर और नौकर को उन के श्रम से होने वालो पैदावार में से केवल उतना भाग देती है, जिससे वे पूँजीपति श्रेणी के मोहताज बने रहें, स्वयं पैदावार के साधन न बना लें । इसी बल पर पूँजीपति श्रेणी मुनाफा कमा सकती हैं । मुनाफा ही पूँजीवाद की आधार शिला है । मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट नैतिकता में दूसरे के श्रम से

मुनाफा कमाना वैसा ही अपराध है जैसा कि किसी दूसरे के धन की चोरी । पूँजीवाद में मेहनत करने वाली श्रेणी स्वतन्त्र नहीं हो सकती । सामन्तवाद और दासप्रथा के समय मेहनत करने वालों को खरीद कर जीवन भर के लिये गुलाम बना लिया जाता था । पूँजीवाद में उन्हें साधनहीन बना कर, मजदूरी के लिये मजबूर करके, पराधीन बना लिया जाता है । मेहनत करने वाली श्रेणी की स्वतन्त्रता केवल समाजवाद में ही सम्भव है । मानव-समाज के इतिहास में, मजदूर राज की नैतिकता पूँजीवादी नैतिकता से अगला और उन्नत कदम है और ऊँची नैतिकता और अहिंसा है ।”

“क्या ?” विस्मय से सर्वोदयीजी ने पूछा, “श्रेणी संघर्ष से उत्पन्न होने वाली मजदूर राज की व्यवस्था ऊँची नैतिकता और अहिंसा हैं ?”

“निश्चय श्रीमान्” इतिहासज्ञ बोले, “जिस समय पूँजीवादी व्यवस्था ने सामन्तवादी व्यवस्था को तोड़ कर कृषक दासों (रैयत) को स्वतन्त्र किया था, वेगार का अधिकार समाप्त किया था, यंत्रों के उपयोग से पैदावार को बढ़ाया था, उस समय वह उन्नतिशील और विकासशील थी । पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य-समाज के विकास को जितना अवसर दे सकती थी, दे चुकी है । अब वह व्यवस्था समाज के विकास के मार्ग में रुकावट बन रही है । भविष्य में विकास का मार्ग तैयार करना समाजवादी व्यवस्था का ही काम है । समाजवादी व्यवस्था निश्चय ही विकास की अगली मंजिल होगी । यह नयी व्यवस्था, पूँजीवादी व्यवस्था के समय समाज में शेष रही और उत्पन्न हुई हिंसा को समाप्त करेगी । श्रेणी संघर्ष की बात आप कहते हैं; पूँजीवादी प्रणाली को सामन्तशाही से समाज की शासन व्यवस्था अपने हाथ में लेने के लिये कम संघर्ष नहीं करना पड़ा था । उस संघर्ष में राजाओं के सिर कटे और प्रजा ने भी खून में गोते लगाये, तब जाकर पूँजीवादी नैतिकता के आदर्श ‘मनुष्यमात्र को समान अधिकार’ और ‘सब को जीविका कमाने और व्यवसाय करने की समान स्वतन्त्रता’ का सिद्धान्त माना गया ।

आज आप मनुष्यों की कानूनी समानता और जीविका उपार्जन की स्वतन्त्रता को मानवता का प्राकृतिक और जन्मसिद्ध अधिकार कहते हैं, परन्तु दासता की प्रथा के युग में, सामन्तशाही के युग में, राजसत्ता के रामराजी युग में मनुष्य के यह जन्मसिद्ध और प्राकृतिक अधिकार कहाँ थे ? यह सब अधिकार कहाँ थे ? यह सब अधिकार मनुष्य-समाज ने ऐतिहासिक द्वन्द्वों और संघर्षों के परिणाम में ही पाये हैं और नवीन अधिकारों की भूमिका भी

तैयार कर दी है। समाजवादी व्यवस्था समाज में सब व्यक्तियों के लिये समान कानूनी अधिकार से अगला कदम 'समान अवसर' देगी और व्यवसायिक स्वतन्त्रता से अगला कदम 'व्यक्तियों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर' देगी। जब तक सब व्यक्तियों को जीविका कमाने और अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर न हो, जीविका कमाने की स्वतन्त्रता का अर्थ कुछ नहीं।"

"पूँजीवादी व्यवस्था का प्रजातन्त्र और सब मनुष्यों को समान अधिकार केवल धोखा है" मार्क्सवादी ने बहुत जोर से कहा, "जब अधिकार के उपयोग करने का सामर्थ्य और अवसर न हो तो अधिकार का लाभ क्या? यह बात ठीक वैसे ही है कि आप भोजन खाने का अधिकार तो सब व्यक्तियों को दें परन्तु भोजन पा सकने का अवसर केवल अपने मित्रों को ही दें। बाद में भूखे मरने वालों को दोष दें कि तुम्हें भी तो सब के समान खाने का अधिकार था। पूँजीवाद कहता है, देश की संपूर्ण जनता को समाज की व्यवस्था बनाने और शासन में भाग लेने का, आर्थिक व्यवस्था बनाने का अधिकार समान रूप से है।

"पूँजीवादी प्रजातन्त्र में, समाज की व्यवस्था चलाते हैं जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि। इन प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। ऐसे सब साधनों पर सम्पत्ति की मालिक श्रेणी का ही एकाधिकार है। आप जानते हैं कि चुनाव के लिये उम्मीदवार लोग १५ से ५० हजार तक रुपया खर्च करते हैं। आप के देश में कितने आदमी ऐसे साधनों का उपयोग कर सकने की अवस्था में हैं? अधिकांश आदमियों के पास ऐसे साधन बिलकुल हैं ही नहीं। कुछ के पास यह साधन दूसरों की अपेक्षा लाखों गुणा अधिक हैं। ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि केवल सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के स्वीकृत लोग ही प्रतिनिधि चुने जायँगे, साधनहीन श्रेणी के प्रतिनिधि नहीं।

"समाजवादी संस्कृति और नैतिकता के विचार से चुनाव के लिये असमान अवसर की ऐसी परिस्थितियों में प्रतिनिधियों का चुनाव होना अन्याय, हिंसा और अनैतिकता है। समाज में कुछ लोगों के सब साधनों का मालिक बने रहने पर और अधिकांश के साधनहीन रहने पर राजनैतिक अधिकारों की समानता की बात केवल प्रपंच है। यह है पूँजीवादी-प्रजातंत्र जिसमें पूँजी को ही खुल खेलने का अवसर रहता है। वास्तविक प्रजातन्त्र तो है मजदूर राज का प्रजातन्त्र। जिसमें सब साधन समाज की साझी सम्पत्ति होने के कारण अवसर

की समानता पहली शर्त होगी। अवसर और साधनों के बिना अधिकार केवल धोखा है।”

सर्वोदयोजी ने चेहरे पर सहानुभूति और करुणा का भाव लाकर समझाया “सम्पत्ति और भौतिक समृद्धि को लक्ष बना कर आप जिस भौतिक संस्कृति (मैटिरियल कलचर), भौतिक नैतिकता और मायावाद को इस देश पर लादना चाहते हैं उससे देश में शांति नहीं हो सकेगी, संघर्ष और हिंसा ही बढ़ेगी। उससे न जनता का निस्तार हो सकेगा और न व्यक्ति का। माया और सांसारिक सम्पत्ति का तो दुर्गुण ही यह है कि आप जितना इसे पायेंगे, उतनी ही आपकी कामना और लोभ बढ़ते जायेंगे; उतना ही संघर्ष और हिंसा बढ़ती जायगी, व्यक्ति और समाज का पतन होता जायगा।”

कामरेड ने बहुत संयम से पूछा—“सर्वोदयोजी, आप सम्पत्ति या माया की निन्दा करते हैं परन्तु आप ही बताइये जीवन के साधनों के बिना जीवित कैसे रहा जा सकता है?”

“जीवित रहना ही तो आदर्श नहीं है।” सर्वोदयोजी ने उत्तर दिया, “यह जीवन तो मोक्ष प्राप्ति अथवा परमात्मा में लीन हो जाने का ही साधन है। इसी आदर्श पर चल कर हम व्यक्तिगत और सामाजिक शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सांसारिक सम्पत्ति को लक्ष मानने वाले लोग पैसे-पैसे के लिये मरते हैं, दूसरे का गला काटते हैं। आध्यात्मिक सुख को आदर्श मानने वाले तो राजपाट को भी लात मार जाते हैं। हमारे देश में तो राजा लोग इस आध्यात्मिक सुख के लिये राजपाट छोड़कर चल देते थे। राज भी करते थे तो विदेह होकर, जैसे महाराज जनक। वही सुख हमारे लिये आदर्श होना चाहिये। इस सुख को मनुष्य किसी से संघर्ष किये बिना, किसी का दास बने बिना, यहाँ तक कि प्राकृतिक आवश्यकताओं का भी दास बने बिना पा सकता है। असली स्वतन्त्रता और असली सुख तो वही है।”

मार्क्सवादी ने उनकी बात पकड़ कर कहा—“इसका मतलब है कि व्यक्ति नितान्त स्वार्थी हो जाय। समाज से मरने-जीने की चिन्ता न करके केवल अपनी काल्पनिक मुक्ति की ही चिन्ता करे। ऐसे आध्यात्मिक सुख की खोज करने वाले लोगों को पालने का बोझ समाज के सिर रहता है। यदि सभी लोग माया का बन्धन तोड़ कर आध्यात्मिक सुख की ही बात सोचें तो माया अर्थात् समाज का आर्थिक संगठन ही समाप्त हो जायगा। यदि समाज निष्क्रिय आत्मवादी का पालन न करे तो उसका आध्यात्म भी न चलेगा। जो आध्यात्मवादी

चाहता है कि समाज उसका पालन करे और वह समाज के लिये कुछ न करे, उससे बढ़ कर स्वार्थी कौन हो सकता है ? ”

सर्वोदयीजी ने कहा—“जो अपनी भी चिंता नहीं करता उसे ही आप स्वार्थी कहते हैं और उन का चेहरा आत्मिक संतोष से गम्भीर हो गया । सर्वोदयीजी की शान्ति का कुछ प्रभाव साहित्यिक, जिज्ञासु और भद्र पुरुष पर भी पड़ता जान पड़ा परन्तु कामरेड उत्तेजित होकर बोल उठे, “जी हाँ, आपका उपदेश है कि सर्व-साधारण मायाके संघर्ष में न पड़ कर जीवन के मोह से स्वतंत्र हो जायें और सम्पत्ति के मालिक लोग जनता की सम्पत्ति के संरक्षक बने रहें । ”

इतिहासज्ञ सर्वोदयीजी की बात से मुस्करा कर बोले—“आपने जिस अतुलनीय आध्यात्मिक सुख को आदर्श मानने का उपदेश दिया है, उसका नुसखा नया नहीं है । आज से हजारों वर्ष पूर्व ही ऋषियों ने उसे सुझाया था परन्तु तब से कितने लोग उसे पा सके ? आपको एक राजा जनक का नाम याद है परन्तु और दूसरे कितने राजा उस सुख से संतुष्ट हो सके ? सर्वसाधारण जनता तो उस आध्यात्मिक सुख को पा नहीं सकी... ”

शुद्धसाहित्यिकजी भी शायद उस आध्यात्मिक सुख के पास-पड़ोस में पहुँच रहे थे । वे हाथ उठाकर बोले—“अरे, वह सर्व-साधारण की चीज़ है ? विरले ही, हजारों लाखों में कोई एक ही उस सिद्धि को पा सकता है । ”

“ठीक है, ठीक है” इतिहासज्ञ ने साहित्यिक की बात को स्वीकार किया, “यही हम कहना चाहते हैं । जब आप मानते हैं कि वह आध्यात्मिक सुख विरले ही लोगों के लिये है, सबके लिये नहीं तो सर्व-साधारण को उसका उपदेश देना धोखा है । हम समाज की समस्या को सार्वजनिक रूप से देखना चाहते हैं । उदाहरण के तौर पर कुछ आदमी तैरने में इतने चतुर हो सकते हैं कि बड़ी से बड़ी नदी की बाढ़ के समय भी तैर कर पार कर लेंगे । तैरने का इतना अभ्यास होना प्रशंसा की बात है परन्तु अच्छा तैर सकने के अभ्यास को आदर्श बना कर आप यह निश्चय नहीं कर सकते कि हमें नदियों पर पुल नहीं बनाना चाहिये । इसी प्रकार यदि विरले ही लोगों के लिये आध्यात्मिक सुख सम्भव भी हो, तो उसी को लक्ष बना कर, हम समाज में आर्थिक सुव्यवस्था और सर्व-साधारण के लिये जीवन के साधन प्राप्त कर सकने के लिये, समान अवसर लाने के संघर्ष की उपेक्षा नहीं कर सकते । हम चाहते हैं कि सब लोगों को जीविका प्राप्त करने का समान अवसर हो, सब लोगों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर हो । क्या यह बात आध्या-

त्मिकता के विरुद्ध है ? समाजवादी नैतिकता में आध्यात्मिक सुख को लक्ष मानने वालों के लिये कोई बाधा नहीं है । आप उस सुख के लिये यत्न कीजिये । सर्व-साधारण लोग वैसा न कर सकें तो उन्हें रहने दीजिये । आपकी रामराजी नैतिकता में सर्व-साधारण के लिये जीवन रक्षा के साधन प्राप्त करने का अवसर नहीं है, हम इसी का उपाय करना चाहते हैं । आप हमें उपदेश देते हैं, आध्यात्मिक सुख से सन्तुष्ट हो जाने का ।”

“परन्तु सांसारिक साधनों के लिये समाज की यह दौड़ और संघर्ष आपको यानि व्यक्ति और समाज को कहाँ ले जा रहा है ? यह आप क्यों नहीं देखते ?” सर्वोदयीजी ने चेतावनी दी, “कैसा भयंकर पतन समाज का हो रहा है ? कितनी हिंसा बढ़ रही है ? इस राह पर चल कर समाज कहाँ जायगा ?”

इतिहासज्ञ सर्वोदयीजी की बात से आतंकित न हो पृष्ठ बैठे—“समाज का पतन हो रहा है ? ... आप कैसे कहते हैं कि समाज का पतन हो रहा है ? आप इस मकान में बैठे हैं जिसमें काँच की खिड़कियाँ और दरवाजे लगे हैं । यदि कोई आदमी चाहे तो इन किवाड़ों को मामूली धक्के में तोड़ सकता है परन्तु इस घर में रहने वाले भय से कांपते नहीं रहते । उन्हें भरोसा है कि समाज में अंधेर नहीं है कि रात में जो चाहे उन्हें लूट ले जाये और उनका गला काट जाये । आज से चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व कोई आदमी समाज पर इतना भरोसा कर सकता था ? समाज पर किसी को इतना विश्वास था ? लोग अपनी कमाई की रक्षा के लिये दो गज मोटी दीवारें बना कर शहतीरों और लोहे के दरवाजे लगाते थे, तब भी उनका मन भय में व्याकुल रहता था । आज आप हजारों रुपया लेकर, निश्चिन्त अकेले कलकत्ते का सफ़र करते हैं । पाँच सौ वर्ष पूर्व आप अपने आपको इतना सुरक्षित चहीं समझते थे । बताइये, समाज में हिंसा और अव्यवस्था बढ़ रही है या घट रही है ? पहले आपके शहरों में गली-गली वेश्यायें कोठों पर शोभायमान थीं । वेश्या रखना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता था । आज आपकी म्युनिसिपैल्टियाँ या तो वेश्याओं को अपनी सीमा में रहने देने की आज्ञा ही नहीं देतीं और देती भी हैं तो उन्हें शहर से कूड़े की तरह बटोर कर दूर रख देती हैं । हमारे पूर्वज जुआ खेलना बड़प्पन समझते थे । एक आदमी दूसरे का घर-बाहर, सम्पत्ति, राज-पाट जीत कर, दूसरे की स्त्री तक को जीत कर, हारे हुये व्यक्ति को जंगलों में हाँक देता था । समाज भी इसे न्याय स्वीकार कर लेता था । आज जुआ खेलिये तो कानूनन जेल जाना पड़ेगा । इसे समाज का पतन कहियेगा.....?”

राष्ट्रीयजी ने उन्हें टोक दिया—“आपको अपनी संस्कृति को गाली देने में जाने क्या सुख मिलता है ? हमारे पूर्वजों की आचार और नैतिकता इतनी ऊँची थी कि इस देश में लोग अपने घरों में ताला भी नहीं लगाते थे और यह बात विदेशी यात्रियों तक ने स्वीकार की है ।”

वैज्ञानिक बोल उठे—“ताला नहीं लगाते थे ? ताला बनाना नहीं जानते होगे तो ताला लगाते भी न होंगे । या घर में कुछ न रहने से ज़रूरत न होती होगी । परन्तु चोरी-डाका तो उस समय साधारण सी बात थी । एक राजा उठकर अश्वमेध यज्ञ करके दूसरे राजाओं को लूट लेता था । एक राजा दूसरे राजा की बहू-बेटियों को छीन लाता था और ऐसे राजा प्रतापी और तेजस्वी माने जाते थे । आज का समाज यह कभी सहन नहीं कर सकता !”

“यह मुसलमानों के राज मे” राष्ट्रीय कह रहे थे ।

इतिहासज्ञ चिल्ला पड़े—“मुसलमानों के राज मे भी और महाभारत के समय में भी । खैर, जाने दीजिये, उस रामराजी नैतिकता में राजा के लिये एक नैतिकता थी और सर्व-साधारण के लिये दूसरी । हाँ, मनुस्मृति तो पढ़ी ही होगी आपने ? उस समय चोरी के लिये, पशुओं से व्यभिचार के लिये भी सजायें बतायी गई है परन्तु बहुविवाह के लिये कोई दंड नहीं है । यह अपराध होते नहीं थे तो इनके लिये सज़ा तजवीज़ करने की क्या ज़रूरत थी ? उस समय चोरी करने वाले के लिये दण्ड था, हाथ काट लेना । आज समाज चोरों को एक स्थान पर बन्द करके उन्हें सुधारने का यत्न करता है । कौन समाज ज्यादा हिंसक समझा जाय ?.....

आज हमारे समाज का नैतिक आदर्श उदार और ऊँचा हो गया है, परस्पर विश्वास बढ़ गया है, हिंसा बहुत कम हो गयी है क्योंकि भौतिक उन्नति ने हमारे रहस-सहन का स्तर पहले से ऊँचा कर दिया है । मनुष्य-समाज का आचार-व्यवहार उसके भौतिक विकास पर ही निर्भर करता है । मनुष्य-समाज पतन की ओर नहीं, विकास और उन्नति की ओर जा रहा है । आज समाज में आर्थिक संकट के कारण हम जीवन को कठिन और संघर्ष-मय पा रहे हैं परन्तु यदि हम संघर्ष करके इस संकट को दूर कर लेंगे तो हम समाजवाद की सर्वोन्मुखी सामाजिक समृद्धि के युग में पहुँच जायेंगे । आप रूस और चीन की ही अवस्था देखिये”

“आपका तो वह हाल है” राष्ट्रीय हंस कर बोले, “अनाज खाये घर का, गीत गाये जग का । जब देखो रूस-चीन की बात ! अपनी भी बात कहिये ?”

कामरेड ने भी ऊँचे स्वर में उत्तर दिया—“आप ही फर्माइये, आपके किस गुण का गीत गायें ? क्या इस बात का कि देश में अन्न संकट बढ़ता ही जा रहा है ? क्या इस बात का कि कपड़ा नहीं मिलता, मकान नहीं मिलता और जनता पर दमन बढ़ता जा रहा है ? रूस आज संसार भर के साम्राज्यवाद के सामने सीना ठोक कर खड़ा है । उसने जितनी योजनायें बनायीं समय से पहले पूरी करके रख दीं और बिना किसी की सहायता के ! आपने जितनी योजनायें बनाईं, एक भी पूरी नहीं कर पाये और दुनिया के सामने खीसें निकाल दीं—हमारी मदद करो । चीन को पूंजीशाही से स्वतन्त्र हुये छः मास नहीं हुये और वहाँ सदा बना रहने वाला दुर्भिक्ष मिटने लगा । आप स्वतन्त्र हुये तो देश में दुर्भिक्ष बढ़ने लगा । चीन आप की तरह अमेरिका की जूती चाटने नहीं गया । यह है मजदूर-राज की नैतिकता और नैतिक बल । राम-राज की नैतिकता यह है कि हम भूखों मर रहे हैं और आपके नेहरू और मुशी कहे जा रहे हैं, घबराओ नहीं, देश में सब कुछ है, दुर्भिक्ष नहीं है । अरे भाई, तुम्हारे लिये सब कुछ है, दुर्भिक्ष नहीं है । हमारे लिये तो कुछ नहीं, दुर्भिक्ष ही है । राम-राज में राजा के लिये कभी दुर्भिक्ष नहीं होता, प्रजा के लिये ही होता है । तिस पर आप यह भी चाहते हैं कि हम आपके गुण गायें ?”

“रूस का आदर्श आप हमारे सामने रखना चाहते हैं ?” क्षुब्ध स्वर में साहित्यिक जी ने विरोध किया, “रूस की उस बर्बर, पशुतापूर्ण व्यवस्था का आदर्श, जिसने मनुष्य के व्यक्तित्व का गला घोट कर उसे एक मशीन बना दिया है, जहाँ कोई व्यक्ति स्वतन्त्रता से अपने विचार नहीं प्रकट कर सकता, मनुष्य स्वतन्त्र विचार नहीं रख सकता, अपने जीवन का स्वतन्त्र ढंग निश्चित नहीं कर सकता, आप हमें उस विदेशी सस्कृति का कैदी बना देना चाहते हैं, जहाँ लोगो को कोड़े लगते हैं । भारत के स्वतन्त्र उन्मुक्त प्राण अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छोड़कर ऐसी दासता कभी स्वीकार नहीं कर सकते !”

“आप व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की बात करते हैं ? कौन है स्वतन्त्र आपके देश में ? क्या आज बम्बई में भत्ता छीन लिया जाने के कारण हड़ताल पर डटे, भूख में मरते २,२५,००० मजदूर स्वतन्त्र हैं ? क्या इसी सप्ताह इन्दौर में गोलियां खाने वाले १५,००० मजदूर; या ९ अगस्त के दिन ग्वालियर गोलो-काण्ड में मारे जाने वाले सात विद्यार्थी ? * आपके अपने शहर में कपड़ा मिल

* यह लेख अगस्त १९५० के तीसरे सप्ताह में लिखा गया था ।

के मजदूर जो डेढ़ मास से मजदूरी की कमी के कारण हड़ताल पर थे और अब निराश होकर भूखे पेट ही काम करने के लिये विवश हो गये, क्या वे व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र हैं ? क्या २,०००० राजनैतिक बन्दी जो आज जेल में सड़ रहे हैं, क्या वे सब सरकारी नौकर जिनकी छटनी हो रही है और जिनका दिल बच्चों के भूखे मरने की आशंका से डूबा जा रहा है, क्या करोड़ों बेजमीन किसान व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र हैं ? महात्मा जी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल आपके बिड़ला, टाटा, सिंहानिया को और उनके दलालों को है । व्यक्तिगत स्वतंत्रता है मिल मालिक को । उसकी मिल में मजदूरी करने वाले हजारों-मजदूरों को नहीं, जो रोटी के टुकड़े के लिये मोहताज हैं । उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल राम-राजी नैतिकता है ! सर्व-साधारण को व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समाजवादी रूस और चीन में है जहाँ प्रजा सब साधनों की मालिक है, जहाँ प्रत्येक मेहनत करने वाले के लिये जीविका देना राज्य की जिम्मेवारी है, यह है मजदूर राज की नैतिकता ! बम्बई में मजदूर गिरफ्तार हो रहे हैं क्योंकि वे अपना भत्ता मांगते हैं । भत्ता न देने के लिये मिल मालिक तो गिरफ्तार नहीं किये जा रहे ? तिस पर आप जन-राज और प्रजा-राज का ढोंग करते हैं ? यह है आपके राम-राज की नैतिकता ! ”

क्लब का वातावरण अधिक गरम हो गया था इसलिये वैज्ञानिक शान्त स्वर में बोले—“आप पूँजीवादी समाचार पत्रों के प्रचार को निष्पक्ष समझ कर, उनके रूस-विरोधी प्रचार का विश्वास कर लेते हैं । परन्तु समाचार पत्र स्वयं पूँजी के बड़े-बड़े आयोजन हैं । इनमें से किसी भी समाचार पत्र को पलट कर देखिये, उसमें दो तिहाई कागज विज्ञापन से भरे होंगे ? अखबार का पेट विज्ञापनों से पलता है । विज्ञापन मजदूर नहीं पूँजीपति देता है । पूँजीपति मुनाफा कमाने के लिये विज्ञापन देता है और इस काम की दलाली में अखबार को पैसा देता है । अखबार स्वयं मुनाफे के लिये कारोबार हैं । अखबार पूँजीवाद के विरुद्ध प्रचार करें तो अपना पेट काटें । क्या आप उनसे ऐसी आशा कर सकते हैं ? पूँजीपति का अखबार न तो दूसरे पूँजीपति को नाराज कर सकता है न सरकार को क्योंकि सरकारी विज्ञापन आमदनी का बड़ा भारी साधन है । आपको याद होगा ‘क्रासरोड’ में पटेल जी के सुपुत्र को रिफ्यूजी फंड का ५,००,०००० रुपया धांधली से दे दिया जाने का समाचार अगस्त के दूसरे सप्ताह में छपा था परन्तु पूँजीवादी पत्र उस समाचार को पी गये । बात साफ है कि राम-राज के लौह पुरुष को कौन नाराज करे ? ”

इतिहासज्ञ बोल उठे—“अभी आपने सुना होगा कि अमेरिका के प्रेसीडेंट रुजवेल्ट साहब ने घोषणा की है कि वे कम्युनिज्म के विरुद्ध सत्य का प्रचार करने के लिये ५,९०,००००० डालर खर्च करेंगे। आजकल एक डालर लगभग चार रुपये का है। कम्युनिज्म और समाजवाद के निरंकुश दमन से तैंतीस वर्ष में रूस कितना तबाह हो गया और संसार कैसे तबाह हो जायगा, यह बताने के लिये जनता के दिमाग पर अरबों रुपये का पर्दा डालने की जरूरत है, परन्तु रूस कितना तबाह हो गया यह इसी बात से स्पष्ट है कि रुजवेल्ट साहब आज रूस से कांप रहे हैं। अमेरिका और दूसरे पूंजीवादी देशों की जनता, रूस की जनता के उदाहरण से पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण बन्धन को तोड़ न फेंके, इसलिये जनता को झूठ के पर्दे में रखना आवश्यक है। पूंजी-पतियों की स्वार्थ रक्षा के लिये, झूठ का पर्दा तैयार करने में रुजवेल्ट अरबों रुपया खर्च करेंगे, वही काम रुजवेल्ट के छोटे भाई बिड़ला, डालमिया के अखबार और उनकी दलाल कांग्रेस सरकार कर रही है। यह आपको मालूम ही है कि भारत को औद्योगिक सहायता देने के लिये अमेरिका ने हिन्द सरकार के सामने, इस देश में मजदूर आन्दोलन, और समाजवादी प्रचार को रोकने की और देश के उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण की बात न करने की शर्त रखी है। हमारी सरकार ने अमेरिका की शर्तों को स्वीकार किया है। इसे आप क्या कहेंगे ? यह भारत की जनता की विचार स्वतंत्रता अमेरिका के हाथ बेच देना नहीं तो क्या है ? यह है रामराज की नैतिकता और सत्य-अहिंसा ?”

कामरेड तीखे स्वर में बोल उठे —“पूँजीवादी शोषकों के लिये इस समय सचाई का प्रचार ही सबसे भयंकर वस्तु है। वह जनता को केवल भूखे मरते रह कर, चुप रहने की ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता दे सकते हैं और अपने लिये शोषण का अधिकार बनाये रखने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहते हैं। पूँजीवाद के इस अन्याय से बड़ी अनैतिकता और हिंसा क्या होगी ?”

कामरेड से आँखें बचाकर सर्वोदयी जी ने भद्रपुरुष और जिज्ञासु को सम्बोधन कर कहा —“अन्याय और हिंसा से, अन्याय और हिंसा का उपाय नहीं हो सकता। संघर्षालु विदेशी संस्कृति के जाल में फँस कर हम अपना अस्तित्व क्यों खो बैठें ? हम अपने अहिंसात्मक भारतीय साम्यवाद पर ही क्यों न दृढ़ रहें ?”

“भारतीय समाजवाद से आपका अभिप्राय ?” कामरेड ने चौंक कर पूछा, “क्या रामराज्य का प्रपंच फीका पड़ जाने पर जनता को बहकाने के

लिये कोई दूसरा प्रपंच सोचा जा रहा है ? यदि समाजवाद भारतीय और पश्चिमीय अलग-अलग हों तो भारतीय और पाश्चात्य आध्यात्म और अहिंसा भी अलग-अलग होनी चाहिये ! ”

इतिहासज्ञ फिर बोल उठे—“समाजवाद को विदेशीय पश्चिमी संस्कृति कह कर जनता को बहकाने की चेष्टा अनैतिक और असत्य है । भाई साहब, योरोप और अमेरिका के पूंजीपति अपने देश की जनता को समझाते हैं कि समाजवादी संस्कृति एशिया की बर्बर संस्कृति है, पश्चिम के काम की चीज नहीं । आप समझाते हैं कि यह पश्चिम की संस्कृति है, भारत के काम की नहीं । देश में रेल चलाते समय, मिलें बनाते समय, बिजली लगाते समय पश्चिम के उदाहरण से सीखते भय नहीं लगा । यह पूंजीवाद का प्रजातन्त्रवाद कौन मनु महाराज या वेदव्यास का आविष्कार है ? यह आपने पश्चिम से सीखा है या नहीं ? यह पार्लियामेंटरी शासन पश्चिम की चीज है या नहीं ? यदि आप जीवन के लिये आवश्यक पश्चिम में विकास पाये पैदावार के साधनों को अपनायेंगे, तो आपके समाज का संगठन भी औद्योगिक व्यवस्था के अनुकूल होगा; वही कठिनाइयाँ आपके सामने भी आयेंगी । उन कठिनाइयों का हल भी आपको उनके अनुभव से सीख लेने में संकोच नहीं करना चाहिये.....”

सर्वोदयी जी ने असम्मति प्रकट करने के लिये अपना सिर जोर में हिलाया और बोले—“नहीं नहीं, हम अपनी आत्मा को पश्चिम के हाथ नहीं बेचेंगे । अपनी संस्कृति और नैतिकता खोकर अपने देश को सर्वनाश के गढ़े में नहीं गिरने देंगे । गीता में भगवान् कृष्ण कह गये हैं कि मनुष्य को अपने ही धर्म में स्थित रहना चाहिये, पराया धर्म संकट का कारण होता है ।”

कामरेड उत्तेजित होकर कुछ कहना चाहते थे पर वैज्ञानिक ने उनका हाथ थाम कर उत्तर दिया—“सर्वोदयी जी, आप चाहते हैं इंग्लैण्ड, अमेरिका अपनी संस्कृति और नैतिकता पर जमे रहें ? रूस और चीन अपनी संस्कृति और नैतिकता पर डटे रहें और हम लौट कर अपनी रामराजी संस्कृति अपना लें और तीनों संस्कृतियों में संघर्ष चलता रहे ? ”

“नहीं नहीं” सर्वोदयी जी ने उत्साह से उत्तर दिया, “हमारी सत्य और अहिंसा की संस्कृति तो शान्ति का मार्ग दिखायेगी । संसार को उसे स्वीकार करना ही होगा, तभी संसार का कल्याण होगा । आपको याद है, पोलैण्ड पर हिटलर का आक्रमण होने पर बापू ने संदेश दिया था कि पोलैण्ड को हिटलर का सामना शस्त्र-शक्ति से नहीं, अहिंसा से और अत्याचार सह कर करना

चाहिये । पोलैण्ड ने बापू की बात नहीं मानी । परिणाम हुआ कि पोलैण्ड हार गया । हमारी संस्कृति की सफलता निश्चित है ।”

सर्वोदयी जी की बात से इतिहासज्ञ कुछ खीझ से गये और बोले—“मार्क्स-वादी-समाजवादी विचारधारा का विकास पश्चिम में होने के कारण, वह हमारे लिये उपयोगी नहीं है ? गांधीवाद का स्रोत क्या है; यह भी आपको मालूम है ? गांधी जी संस्कृत तो जानते नहीं थे । गीता भी पढ़ते थे तो अंग्रेजी अनुवाद से । गांधी जी ने अपने आपको कभी मनु, व्यास शंकर का अनुयायी नहीं कहा । उन्होंने अपनी सम्पूर्ण विचार-धारा टाल्सटाय, एमर्सन और थोरे से ली है । उन्हीं को वे अपना गुरु मानते थे । यह बात उन्होंने स्वीकार भी की है । गांधीवाद का मूल मंत्र है ‘हिंसा का प्रतिकार शक्ति से नहीं करना चाहिये’ (रजिस्ट नाट द ईवल) यह मंत्र गीता, वेद और आर्य स्मृतियों का नहीं, बाइबिल का है । शूद्रक ने तपस्या के अधिकार का दावा किया था तो राम ने सत्याग्रह में उसका हृदय परिवर्तन नहीं किया, तलवार से उसका सिर काट डाला । कौरवों ने पाण्डवों का राज छीन लिया तो भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर और अर्जुन को सत्याग्रह आन्दोलन करने की राय न देकर, कुरुक्षेत्र में युद्ध करने की ही राय दी । सत्याग्रह का ऐतिहासिक उदाहरण आपको मिलता है, रोम के अत्याचारी राजाओं के मुकाबले ईसाई साधुओं के व्यवहार में । अब आप बताइये, गांधीवाद को भारतीय संस्कृति कैसे माना जा सकता है ?”

वैज्ञानिक ऊब कर उठ खड़े हुये और हाथ जोड़ कर बोले—“महाराज, यदि जीवन में सफलता, उन्नत संस्कृति और नैतिकता की कसौटी है तो संसार का लगभग तिहाई भाग बहुत ही थोड़े समय में, समाजवादी संस्कृति और नैतिकता को अपना चुका है । रामराजी, राजसत्तात्मक तथा सम्पत्ति के अधिकार पर आश्रित संस्कृति और नैतिकता संसार से सिमिटती ही जा रही है । यह हमारी बुद्धि पर निर्भर करता है कि हम किस संस्कृति को स्वीकार करेंगे । समाजवाद आपको पतलून पहनकर पश्चिमी संस्कृति अपनाने के लिये बाध्य नहीं करता । वह तो समाज की एक आर्थिक प्रणाली मात्र है, जो समाज के सब व्यक्तियों के लिये जीवन के समान अवसर और जनवादी नैतिकता का अनुमोदन करती है....”

सब लोग उठ गये परन्तु सर्वोदयी जी ने बैठे-बैठे ही अपनी बात अंत में कह दी—“इसका निर्णय तो अंत में एक दिन भगवान् ही अवतार लेकर, संसार से पाप का नाश करके करेंगे !”

राम-राज का प्रजातंत्र और मज़दूर तानाशाही

चक्कर क्लब में सृष्टि के उद्भव और मनुष्य-समाज के इतिहास की चर्चा होती है, वादों और सिद्धान्तों की उधेड़बुन भी बहुत होती है परन्तु चक्कर क्लब के सदस्य समाज के सर्व-साधारण लोगों को अनुभव होने वाली कठिनाइयों और उनकी समस्याओं से मुक्त नहीं हैं। शारीरिक परिश्रम का अवसर न आने में, बड़े लोग शरीर शिथिल अनुभव होने पर, टेनिस या पोलो खेल कर शरीर को थकाना और शरीर से कुछ पसीना बहा देना आवश्‍यक समझते हैं। बड़े लोगों के दिमाग भी कभी-कभी आलस्य की अंगड़ाइयाँ लेने लगते हैं। तब वे स्फूर्ति के लिये राजनीति, आर्थिक विधान, आस्तिकता-नास्तिकता पर बहस करने लगते हैं। उनकी बहस उदार होती है। बहस करने वाले उदारशायों की बहस का उनके जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे नितान्त तटस्थ होकर, अपने व्यक्तिगत प्रश्न और स्वार्थ को परे रख कर, बात कर सकते हैं।

चक्कर क्लब नित्य जीवन की समस्याओं से पिछे हुये लोगों का समुदाय है, इसलिये यहाँ अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की बहस भी व्यक्तिगत स्वार्थ में प्रभावित रहती है और व्यक्तिगत समस्याओं का विवेचन भी राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय समस्या का आधार बन जाता है। ऐसा भी होता है कि लोग व्यक्तिगत और घरेलू समस्या से झुंझलाकर अपना दुख बटाने के लिये ही यहाँ आ बैठते हैं और बड़ी-बड़ी बातों में अपनी छोटी-छोटी चिन्तायें भुला देना चाहते हैं।

उस दिन भद्र पुरुष कुछ ऐसी ही परिस्थिति में आये और अपने भतीजे को यूनिवर्सिटी में शिक्षा दिला सकने की सम्भावनाओं की चर्चा करने लगे। संक्षेप में उन्होंने बताया कि उनका भतीजा बहुत ही प्रतिभाशाली और परिश्रमी

था । उसने मैट्रिक में अपने स्कूल में प्रथम रह कर वजीफा भी पाया था । वह इंटर में भी जरूर प्रथम आता लेकिन उसे परीक्षा की तैयारी का समय ही नहीं मिला । पिछले वर्ष भद्रपुरुष के भाई की अकाल मृत्यु हो जाने से, लड़के के सिर पर घर का खर्च चलाने का बोझ भी आ पड़ा था । भद्रपुरुष के भाई किसी कम्पनी में पचास रुपये माहवार पर मुंशी थे । लड़के की हिम्मत और योग्यता इतनी थी कि दो-दो ट्यूशन पढ़ाकर भी, वह पहले डिवीजन में पास हो गया था । प्रश्न था कि अब क्या किया जाये ? यदि लड़का आगे नहीं पढ़ता, तो केवल ४०-५० रुपये का मुंशी हो कर रह जायगा या हाज़मे और ताकत की गोलियां बनाने वालों की गोलियाँ एक बेग में भर कर रेलगाड़ियों में बेचता फिरेगा । पिछले वर्षों से अत्याधिक परिश्रम करने से वह कुछ कमजोर भी हो गया था । उसका पेट खराब रहने लगा था । घर पर उस की माँ, एक छोटा भाई और एक बहिन भी थी । ट्यूशन से वह कितना कम सकता था ? आगे यूनिवर्सिटी की पढ़ाई का बोझ होगा । सोचिये, आखिर कितना परिश्रम कर सकेगा ?

भद्रपुरुष की आँखों में अपने अमामर्थ्य और भाग्य के प्रति क्रोध से आँसू आ रहे थे । वे स्कूल में मास्टर हैं । महंगाई भत्ता मिला कर उन्हें एक सौ रुपया बन जाता है । एक ट्यूशन भी करते हैं । घर पर उनकी माँ है, उनसे बच्चों की माँ है और बच्चे । भगवान की दया से चालीस वर्ष की आयु में पाँच तो हैं ही, और शीघ्र ही प्रसूता के लिये लम्बे-चौड़े खर्च की समस्या आने वाली है । खैर, यह तो भगवान की इच्छा की बात है । इस जमाने में जब आटा रुपये का दो सेर, दूध दो सेर भी नहीं और घी अढ़ाई छटांक हँ पर सौ सवा सौ कमाने वाले परिवार में घी खाता ही कौन है ?....बताइये प्रति व्यक्ति १५) मासिक में क्या निर्वाह चल सकता है ? स्कूल मास्टर का सफेद-पोशी की मर्यादा भी निबाहना है ।....वे अपने भतीजे की क्या सहायता कर सकते हैं ? न करें तो कैसे ? लड़के का जीवन मिट्टी में मिल जायें ? लड़के को अवसर मिले तो वह क्या नहीं बन सकता ?

भद्रपुरुष के दुख से द्रवित होकर पहले सर्वोदयीजी ही बोले । उन्होंने हाथ से छत की ओर संकेत कर कहा—“वही सब करने वाला है ?”

कामरेड ने भी हाथ से छत की ओर संकेत कर कहा—“उसी ने तो लड़के के बाप को उठा लिया और भद्रपुरुष बेचारे के घर को १५) मासिक प्रति व्यक्ति दे रहा है ।”

“हां और क्या ?” अधीर स्वर में भद्रपुरुष ने स्वीकार किया ।

सर्वोदयीजी ने भद्रपुरुष को ढाढ़स बंधाया—“घबराइये नहीं । ‘उसी’ पर विश्वास रखिये । ‘वह’ पत्थर में बन्द कीड़े का भी पेट भरता है । जाने किसके मन में ‘वह’ दया उत्पन्न करदे और लड़के की शिक्षा का प्रबन्ध हो हो जाये या लड़के को अच्छी ट्यूशनें ही मिल जायें !”

कामरेट फिर बोले —“क्यों साहब, लड़का किसी के आगे हाथ क्यों पसारे?”

मौजी कुछ आदमियों के नाम गिनाने लगे, जिनके यहाँ ट्यूशन मिल सकने की सम्भावना हो सकती थी परन्तु मार्क्सवादी बोले—“यह भी तो सोचिये कि मनुष्य के लिये उचित परिश्रम की एक सीमा होती है । उससे अधिक परिश्रम करने का अर्थ जीवन की शक्ति को शीघ्र समाप्त कर देना होता है । दिये में एक बत्ती जलाने और तीन बत्ती जला देने से कुछ फरक पड़ेगा या नहीं ? आमदनी पर्याप्त न होने से लड़का उचित पौष्टिक भोजन तो पा नहीं सकेगा और मेहनत करेगा मुनासिब से बहुत ज्यादा । आप दिये में बहुत कम तेल डाल कर तीन-चार बत्तियाँ जला दीजिये और पेंदी में एक छेद भी कर दीजिये तो क्या होगा ?”

भद्रपुरुष को वैज्ञानिक ने सम्बोधन किया—“भाई साहब, बुरा न मानियेगा जैसे आपके भतीजे की समस्या वैसे मेरे लड़के की और हम जैसे सभी लोगों की सन्तान की समस्या है । उसका भाग्य यह होगा कि लड़का जान की बाज़ी लगा कर एम० ए० पास कर लेगा । एम० ए० हो जायगा फिर भूखे पेट नौकरी के लिये भटकेगा । तब तक उसे दिक हो जाय, दमा हो जाय, अत्यधिक परिश्रम के बोझ से आँतड़ियाँ निर्बल होकर सदा के लिये पेट का रोगी हो जाय ! अरे भाई, उनका स्वर ऊँचा हो गया, “पूँजीवादी समाज और सरकार नहीं चाहती कि हमारे बच्चे पढ़ें । क्या जरूरत है इस समाज और इसकी सरकार को कि हमारे-तुम्हारे बच्चे बहुत अधिक पढ़-लिख कर लायक हों ? खुद बड़े आदमियों की औलाद के लिये ही काफी नौकरियाँ और पेशे नहीं हैं, न कारोबार में ही गुन्जाइश है । इस समाज को अफसर और मालिक नहीं चाहिये । अफसर और मालिक बहुत हैं । जरूरत है, नौकरों और मजदूरों की । अफसर और मालिक बढ़ेंगे तो क्या होगा ? अफसरों की रोज़ी और मालिकों का मुनाफ़ा कम होगा । वे लोग ऐसा क्यों होने दें ? मजदूर और नौकर बढ़ेंगे तो क्या होगा ? बेकार नौकर और मजदूर कम तनखाह और मजदूरी पर काम करने के लिये मिलेंगे । मालिक और अफसर लोगों का

फायदा इसी में है इसलिये पूँजीवादी समाज और उसकी सरकार शिक्षा की व्यवस्था ऐसी करती है कि केवल बड़े आदमियों के लड़कों के लिये शिक्षा का खूब अच्छा प्रबन्ध हो सके। हम-तुम लोगों के लड़कों को शिक्षा से दूर रखने के लिये सीधा तरीका है कि शिक्षा का खर्च बढ़ाते जाइये और साथ-साथ यह भी कहते जाइये कि जनता और देश की सन्तान के लिये शिक्षा का प्रबन्ध है, शिक्षा का दरवाजा सब के लिये समान रूप से खुला है लेकिन शिक्षा का दरवाजा इतनी ऊँचाई पर बनाइये कि रुपये की लम्बी सीढ़ी लगा कर, वहाँ तक चढ़ने का अवसर केवल बड़े आदमियों के लड़के ही पा सकें।”

“आप समाज और सरकार को गाली दे रहे हैं” सर्वोदयीजी ने पूछा, “क्या आप समाज नहीं हैं। क्या जनता की सरकार आपकी सरकार नहीं है?”

“हम समाज का अंग अवश्य हैं परन्तु हम पराधीन हैं” कामरेड ने उत्तर दिया, “हम लोग केवल पूँजीपति श्रेणी के उपयोग के लिये हैं। सरकार जनता की नहीं है। सरकार तो समझती है कि जनता सरकार की है। जनता का कर्तव्य है कि खेती पर लगान दे, जो चीज खरीदे उस पर ‘खरीद कर’ भरे। सरकार का खर्च चलाये, सरकार का हुक्म मानें, सरकार की जय पुकारें परन्तु जनता के लिये कोई अवसर नहीं, पूँजीपति अमीरों के लिये सब कुछ है। साधनहीन गरीब मजदूरों, भूमिहीन या कम भूमि वाले किसानों के लिये कुछ नहीं। केवल एक भद्रपुरुष जी का ही भतीजा तो शिक्षा न पा सकने के कारण, जीवन में अवसर नहीं खो रहा है। लाखों-करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं जो शिक्षा नहीं पा सकते। लाखों करोड़ों बीमार हैं जो दवाई नहीं पा सकते? कितने बेकार हैं जो मजदूरी नहीं पा सकते? कोई सहायता दे देगा और भद्र-पुरुष जी का भतीजा बी० ए० पास कर लेगा। सहायता मांगने वाले करोड़ों और दे सकने वाले हजार पाँच सौ हों तो देश का काम कैसे चलेगा? लाखों तो साक्षर हो सकने का भी अवसर नहीं पा सकते……”

बगल में बैठे कांग्रेसी जी ने कामरेड के मुख के सामने हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और बोल उठे—“यह आप गलत बात कह रहे हैं। कांग्रेस सरकार ने प्राइमरी-शिक्षा मुफ्त कर दी है और अनिवार्य भी। अब अगर कोई न पढ़े तो सरकार का क्या कसूर है?”

भद्रपुरुष अपना दुख लूल कर बोल उठे—“हाँ, शिक्षा अनिवार्य कर दी है; इसीलिये सरकार स्कूल मास्टर्स को चपरासी से भी कम तनखाह देती है? अजी सुनिये, हमारे पड़ोस में चुन्नी बेवा रहती है। उसका नौ बरस का लड़का

है। दोनों रेल की लाइन पर कोयला चुनने जाते हैं तो दिन भर में बारह आने कमा लाते हैं। लड़के को अनिवार्य शिक्षा पाने के जिये स्कूल भेज दें तो छः आना ही रोज रह जायगा। वह क्या अपने और लड़के के पेट में घास भरेगी? साहब सुना है, जो लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजेंगे उन्हें सरकार सजा देगी.....”

कामरेड उबल उठे—“सरकार सजा ही देगी, चुन्नी को रोटी कमाने के लिये मजदूरी नहीं देगी? यह अच्छा रहा, मजदूरी देना रहा पूंजीपति के हाथ और सजा देना सरकार के हाथ। भैया, पूंजीपति श्रेणी का राज है। पूंजीपति की औलाद के लिये सब सुविधा है। मजदूर श्रेणी का राज होगा तो मजदूर की संतान के लिये भी सुविधायें हो जायंगी, जैसे रूस में हैं?”

कामरेड को चुप कराने के लिये अपना हाथ भगवान बुद्ध की शान्त मुद्रा में उठाकर सर्वोदयी जी ने समझाया—“प्रत्येक बात में श्रेणों संघर्ष और हिंसा की बात करने और सरकार को गाली देने से क्या लाभ? इससे अपना ही मन अशान्त होता है। आप मनुष्य के ऊपर, भगवान के न्याय और विधान को क्यों भूल जाते हैं? मनुष्य के कर्मफल की बात क्यों भूल जाते हैं। हमारे पिछले जन्म के भी तो कर्म हैं.....”

वैज्ञानिक ने अपने स्थान से आगे बढ़ सर्वोदयी जी के मुंह के आगे हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और सहसा भद्रपुरुष को सम्बोधन कर बैठे—“बता-इये, आपके किस कर्म का फल है कि आपका भतीजा शिक्षा पाने का अवसर नहीं पा रहा; आपके सम्पूर्ण परिवार को अपर्याप्त भोजन से क्यों निर्वाह करना पड़ रहा है?”

“भाई मुझे क्या मालूम? मैं तो नहीं जानता!” भद्रपुरुष ने विवशता में हाथ फैला कर उत्तर दिया, “जाने कब कौन जन्म हुआ था और किसने क्या कर्म किये होंगे?”

“क्यों नहीं मालूम?” अपना स्वर तेज कर वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, “भगवान ने आपको बताया नहीं?”

“नहीं तो” भद्रपुरुष और भी सकपका गये, “भगवान कब किसको बताते हैं? हमें तो किसी ने नहीं बताया।”

“तो आप सर्वोदयी जी से पूछ लीजिये!” वैज्ञानिक ने राय दी।

“हम क्या परलोक जानते हैं? हम क्या बता सकते हैं?” सर्वोदयी जी ने विरोध किया।

वैज्ञानिक ने सर्वोदयी जी की ओर देखा—“सुनिये भगवन, अगर यह मास्टर साहब किसी लड़के का अपराध बताये बिना चार चांटे लगा दें तो कोहराम मच जायगा परन्तु आपके दयालु-न्यायकारी भगवान किसी को भी कारण बताये बिना, लाखों आदमियों को तपेदिक कर देते हैं, भूखा रखते हैं, अनपढ़ रखते हैं और क्या-क्या नहीं करते। आपको इस पर कोई आपत्ति नहीं है ?”

बीच में मार्क्सवादी बोल उठे—“ठीक है, और क्योंकि आजकल सत्य-अहिंसा के पुजारियों और ईश्वर भक्तों * की सरकार का राज है इसलिये यह सरकार भी लोगों को उनका अपराध बताये बिना, उनका अपराध अदालत में प्रमाणित किये बिना सजा देती है।” ×

सर्वोदयीजी ने मार्क्सवादी की बात का कोई उत्तर न देकर भद्रपुरुष को सान्त्वना देने के लिये कहा—“यदि आप ईश्वर के विधान और न्याय पर भरोसा नहीं करेंगे तो आपके पास इस बात का क्या उत्तर है कि कोई आदमी सब सुविधायें लेकर पैदा होता है और कोई जीवन में कुछ भी सुविधा नहीं पा सकता। जहां मनुष्य का ज्ञान काम नहीं करता, वहां तो आपको ईश्वर का विधान मानना ही पड़ेगा, क्यों ?”

भद्रपुरुष, जिज्ञासु और मौजी इस तर्क को गंभीरता से सुन रहे थे परन्तु इतिहासज्ञ बोल पड़े—“जहां मनुष्य का ज्ञान काम नहीं करता वहीं भगवान है। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य का अज्ञान और उसकी मूर्खता ही भगवान है !”

सर्वोदयी जी ने खिन्न होकर सिर हिला दिया। विरोध में मौन रह गये।

कांग्रेसी भाई अपने स्थूल पेट को हिलाकर बोले—“हां, आप तो जानी हैं न; आप ही बताइये, क्यों कोई धनवान पैदा होता है और कोई निर्धन ?”

मार्क्सवादी बीच में टोक बैठे—“क्या भगवान के विधान से यह आवश्यक है कि कोई धनी और कोई निर्धन पैदा हो ?”

* सन १९४८ में सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों को वोट न देकर, कांग्रेस के ही उम्मीदवारों को वोट देने के लिये, जनता से अपील करते हुये श्री० गोबिन्दबल्लभ पंत ने जनता को समझाया था कि आप सोशलिस्टों पर कैसे भरोसा कर सकते हैं ? सोशलिस्ट तो भगवान को भी नहीं मानते !

× शान्ति सुरक्षा कानून के अनुसार व्यक्ति का अपराध बताये और अदालत में प्रमाणित किये बिना उसे जेल में रखा जा सकता है। लेखक फरवरी १९४९ में स्वयं भुगत चुका है।

“होता है” सर्वोदयी जी मौन न रह सके, “जब होता है तो भगवान का विधान नहीं मानियेगा ? या आप कह दीजियेगा, कि ऐसा नहीं होता ?” अपनी युक्ति की प्रबलता प्रकट करने के लिये उन्होंने जोर से हाथ फशं पर पटक दिया ।

मार्क्सवादी ने दोनों हाथ जोड़ कर विनीत स्वर में उत्तर दिया—“महात्मा जी, ऐसा अन्याय भगवान की इच्छा से नहीं होता । क्या भगवान चाहते हैं कि लोग बेकारी और भूख से मरें, बीमारियों से मक्खियों की तरह मर-मर कर गिरें, शिक्षा का अवसर न होने से अशिक्षित रहें ? भगवान यदि न्यायकारी और दयालु हैं तो वे निश्चय सब के लिये समान अवसर चाहते हैं । यह अन्याय होता है पूंजीवादी समाज की व्यवस्था के दोष से । पीड़ित लोग इस अन्याय के विरुद्ध आवाज न उठाये इसलिये आप इस अन्याय को भगवान की इच्छा बता देते हैं । यदि भगवान हैं तो उनकी इच्छा ये अब रूस की समाजवादी शासन-व्यवस्था में, लोग पिछले जन्म के कर्मफल के कारण, साधनहीन और अवसरहीन अवस्था में जन्म क्यों नहीं लेते ? पूंजीपतियों के स्वार्थ को भगवान का न्याय बता देना बड़ा भारी पाप है । रूस चीन में अब पूंजीवादी भगवान का विधान नहीं चलता । वहां पैदा होने वाले लोगों के लिये समान सुविधा और अवसर रहता है । वहां पूंजीपतियों के भगवान का राज नहीं मजदूरों के भगवान का राज है ।”

मार्क्सवादी की बात का प्रभाव न जमने देने के लिये कांग्रेसी भाई बोल उठे—“आपके विचार में भद्रपुरुष जी के भतीजे की शिक्षा की समस्या हल करने के लिये उपाय यह है कि श्रेणी संघर्ष चलाकर पहले इस देश में मजदूर तानाशाही कायम हो जाय, तब तक वह लड़का प्रतीक्षा करता रहे ?”

कांग्रेसी भाई के इस मज़ाक से कामरेड निरुत्तर नहीं हुये और दृढ़ निश्चय का घूसा उठाकर और आंखों में गहरे असंतोष की चिनगारी चमका कर बोले—“आज आप चाहें तो साधनहीन श्रेणी के प्रयत्नों का मज़ाक उड़ा सकते हैं लेकिन मजदूर भद्रपुरुष के भतीजे को बैठ कर, मजदूर शासन कायम हो जाने की प्रतीक्षा करने की सलाह नहीं देते । मजदूर भद्रपुरुष के भतीजे को समझाना चाहते हैं कि यह केवल तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या नहीं है । इसके लिये तुम सम्पूर्ण साधनहीन श्रेणी के साथ मिलकर, अपने प्रति अन्याय करने वाली व्यवस्था का अन्त करने की चेष्टा करो !”

कांग्रेसी जी ने परेशान हो जाने के भाव से हाथ फैला कर और सहानुभूति

से भद्रपुरुष की ओर देख कर कहा—“लीजिये साहब, लड़के की जिन्दगी बनने-बिगाड़ने का प्रश्न तो आज है और यह समस्या के फँसले की तारीख डाल रहे हैं मजदूर तानाशाही कायम होने के बाद ?” कामरेड को निरुत्तर कर देने के विश्वास में कांग्रेसी जोर से हँस दिये ।

इतिहासज्ञ ने एक सिगरेट सुलगा लिया था, लम्बा कश खींच कर बे बाले—“भाई साहब सुनिये, आप प्रभावशाली आदमी हैं । सम्भव है आपकी सिफारिश से भद्रपुरुष के भतीजे का कुछ प्रबन्ध हो जाये । सुना है, बिड़ला जी, डालमिया जी और टाटा साहब गरीब लोगों को सहायतार्थ वजीफे भी देते हैं परन्तु ऐसे कितने आदमियों की समस्या हल हो सकेगी ? क्यों दें वे वजीफे और कोई मांगे क्यों ? प्रश्न है कि समाज में सभी के लिये शिक्षा और जीविका पाने का समान अवसर क्यों न हो ? यदि ऐसा नहीं होता तो यह भद्रपुरुष के भतीजे पर ही नहीं बल्कि सर्व-साधारण पर अन्याय है । ऐसे प्रश्नों को व्यक्तिगत रूप से नहीं, सामाजिक रूप से ही सोचा जाना चाहिये ।”

उनके मुँह की बात मार्क्सवादी ने ले ली—“भद्रपुरुष के भतीजे की समस्या केवल उनकी व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण नहीं है……”

जिज्ञासु ने टोक दिया—“इनकी व्यक्तिगत परिस्थिति के कारण नहीं है तो किस कारण है ?”

मार्क्सवादी ने जोर से उत्तर दिया—“इनके भतीजे की समस्या, पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा हो गयी आर्थिक परिस्थिति के कारण है । इस समस्या का हल व्यक्तिगत रूप से ढूँढ़ने का अर्थ, इस व्यवस्था में गुंजाइशें ढूँढ़ना है । इसे अपने लिये सह्य बनाना है । यह सम्पूर्ण शोषित सर्व-साधारण को भुला देने और एक व्यक्ति, जो असंतोष प्रकट कर रहा है, उसे किसी तरह टुकड़ा डाल कर चुप करा देने की कोशिश करना है । शहर में बीमारी फैलने पर आप एक-एक आदमी का इलाज करते जायें और बीमारी के कारण को शहर से दूर न करें, यह तो अक्लमन्दी नहीं होगी । ऐसे ही अपनी शक्ति, व्यक्तिगत रूप से किसी एक आदमी की आर्थिक उलझन सुलझाने में न लगाकर; विषम व्यवस्था को बदलने का यत्न करना चाहिये । पूँजीवादी व्यवस्था और मौजूदा सरकार की शासन-व्यवस्था में इस समस्या का हल हो ही नहीं सकता । यह समस्यायें इस व्यवस्था का ही तो परिणाम हैं । जिन समस्याओं में पूँजीपति श्रेणी का भी स्वार्थ है, उन्हें तो पूँजीपति समाज सामाजिक रूप से हल करना चाहता है; उदाहरणतः नगर में बीमारी फैलना, चोरी डकैती होना आदि ।

जिन समस्याओं अर्थात् बेकारी और अवसर की कमी आदि में केवल गरीबों का मरन है, उन्हें आप व्यक्तिगत प्रश्न बना कर छोड़ देते हैं ? यह सरकार का पूँजीवादी दृष्टिकोण नहीं तो क्या है ?”

कांग्रेसी जी खिन्न स्वर में बोले—“आप हर बात में सरकार पर लाकर तान तोड़ते हैं। कांग्रेसी सरकार बने अभी जुम्मा-जुम्मा सात दिन तो हुये नहीं। आपने कांग्रेसी सरकार को कुछ करने का अवसर ही कब दिया है ? रूस की आप बड़ी तारीफ़ करते हैं परन्तु उन्हें जमे बत्तीस बरस भी तो हो गये हैं ?”

“कांग्रेस सरकार को भी तो भाई साहब तीन बरस हो ही गये ? तीन बरस में इतना तो पता चल गया कि कांग्रेस सरकार चल किस राह पर रही है।” वैज्ञानिक बोले।

“कांग्रेस सरकार बिलकुल जनता का राज कायम करने की राह पर चल रही है। देखिये, पंचायत राज !” कांग्रेसी जी ने सुझाया।

मार्क्सवादी बोले—“पहली बात तो यह है कि पंचायत राज चल कहीं नहीं रहा, वह है दिलबहलावे का तमाशा। आप यह बताइये कि पंचायतें यह निश्चय कर सकती हैं कि लगान कितना हो ? जमीन का बटवारा कैसे हो ? पैदावार कितनी हो और कैसे हो ? मजदूरी कितनी हो ? क्या खेतों को और कारखानों को पंचायतों के अधिकार में लिया जा सकता है ?”

“पंचायत कुछ भी नहीं कर सकती। बस यह फैसला कर सकती है कि औरत भगाने वाले को कितने जूते लगें या गांव में सांझी संडास बना ली जाये। पूँजीपति सरकार ने सम्पत्ति की रक्षा के लिये जो नियम बनाये हैं, पंचायत उनकी चौकसी कर सकती है। आर्थिक व्यवस्था को तो केन्द्र और प्रान्त की गद्दी पर कब्जा करके पूँजीपति अपने हाथ में सुरक्षित रखे हैं। आप पंचायत में बैठ कर हुक्का घुमाया कीजिये।”

कांग्रेसीजी ने प्रश्न किया—“आप कांग्रेसी सरकार को पूँजीवादी सरकार कैसे कह सकते हैं ? कांग्रेस तो पूँजीयतियों की संस्था न है, न थी। क्या कांग्रेस में केवल पूँजीपति ही रहे हैं ? अरे भाई पूँजीपति एक रहा तो हजार सर्व-साधारण लोग भी रहे। कांग्रेसी सरकार को हम पूँजीवादी सरकार कैसे मान लें ?”

“यह बात ठीक है” इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया, “कि कांग्रेस में सर्व-साधारण की अपेक्षा पूँजीपतियों की संख्या कम है परन्तु कांग्रेस की नीति तो पूँजीपति श्रेणी के दृष्टिकोण से ही निश्चित होती रही है। जनता की शक्ति

का उपयोग, कांग्रेस ने पूंजीपतियों का स्वार्थ मिट्ट कर देने के लिये किया है । स्वराज्य के लिये लड़ी जनता और शासन का अधिकार सम्भाल लिया पूंजीपति श्रेणी ने ।”

सर्वोदयीजी विरोध में सिर हिलाकर बोले—“यह कोई कैसे मान सकता है ? कांग्रेस तो देश के गरीबों की ही प्रतिनिधि है और विशेष कर बापू के नेतृत्व में चलने वाली कांग्रेस तो पूंजीपतियों के हाथ की चीज़ हो ही नहीं सकती थी ? बापू तो दरिद्र-नारायण के पुजारी थे ।”

“गांधी जी के प्रभाव और गांधीवाद की राह में ही तो कांग्रेस पूंजीपतियों की स्वार्थ साधना का साधन बनती रही ।” मार्क्सवादी उत्तेजित होकर बोले, “गांधी जी ने सदा ही पूंजीपति श्रेणी के हित की रक्षा के लिये, इस देश के राजनैतिक स्वतंत्रता के आन्दोलन को क्रांति के मार्ग से हटाकर, इसे ब्रिटिश पूंजीवाद से समझौते का ही आन्दोलन बनाये रखा था । गांधी जी ने जब भी क्रांति की सम्भावना सामने देखी, आन्दोलन को स्थगित कर दिया । गांधी जी के सामने सदा ही यह आशंका बनी रही कि ब्रिटिश पूंजीवादी शासन को उखाड़ फेंकने वाली क्रांति, कहीं भारत में पूंजीवाद को भी निर्मूल न कर दे ? पूंजीवादी व्यवस्था पर आक्रमण ही गांधी जी की दृष्टि में सब से बड़ी हिंसा थी । मालिक के अधिकार की प्रतिष्ठा ही गांधी जी के रामराज्य का आदर्श था ।”

“इस से बड़ा झूठ और और क्या हो सकता है ?” सर्वोदयी जी चिल्ला उठे, “इससे बड़ी कृतघ्नता और क्या होगी ? दुनियाँ जानती है कि बापू ने ही इस देश को स्वतंत्र किया । कांग्रेस आन्दोलन ने ही इस देश की राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त की । यह कामरेड जो युद्ध के जमाने में ब्रिटिश सरकार की बगल में जा घुसे थे, आज देश की स्वतंत्रता के समर्थक बन रहे हैं और बापू पर ब्रिटिश सरकार के सहायक होने का आरोप लगा रहे हैं ? इतने बड़े असत्य को सहन करना सम्भव नहीं ?” सर्वोदयीजी के नेत्र लाल हो गये । उत्तेजना में उनके हाथ इतने वेग से चल रहे थे कि यदि कोई जीव उनकी पहुँच में आ जाता तो उसकी हिंसा हो जाने की पूर्ण आशंका थी ।

जिज्ञासु और भद्रपुरुष ने बीच-बचाव किया—“सुनिये, सुनिये ! कामरेड निश्चय ही गम्भीर आरोप लगा रहे हैं और उसका उत्तर आप गम्भीरता से दीजिये । गांधीवाद ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही का हृदय परिवर्तन करके, रक्तपात रहित क्रान्ति से भारत का राज्य ले लिया है तो आप कामरेडों का भी हृदय

परिवर्तन क्यों नहीं कर सकते ? यह लोग अपना और अपनी श्रेणी का भला ही तो चाहते हैं । इन्हें यदि मार्क्स और रूस की बात समझ में आ सकती है तो आपकी बात भी समझ सकेंगे । आप इन्हें केवल हिंसा का ही पुजारी क्यों मान बैठे हैं ? ”

“जनाब, हम तो प्रमाण देकर बात करते हैं” मार्क्सवादी ने सीना फैला कर चुनौती दी, “गांधी जी ने १९२२ फरवरी के ‘यंग इण्डिया’ में अपने लेख ‘डाक्टरिन आफ स्पोर्ट्स’ (तलवार का मार्ग) में स्वयं स्वीकार किया है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये हमने यदि तलवार का मार्ग लिया होता तो हमें शायद उतनी कुर्बानियां न करनी पड़तीं जितनी कि अहिंसा के मार्ग पर चल कर ब्रिटिश दमन के सामने देनी पड़ीं । याद रखिये, यह बात सन २२ की है अर्थात् गांधी जी सीधी क्रान्ति से सन २२ में ही स्वराज्य पा लेना संभव समझते थे । फिर सन ४७ तक हमें गुलामी में क्यों सड़ाया गया ? उन्होंने अपने लेख ‘माई सारोज’ (मेरे संताप) यंग इण्डिया फरवरी २३, १९२२ में स्पष्ट लिखा है—भारत की स्वतंत्रता से अधिक महत्व मेरे लिये अपनी मुक्ति का है । मैं पहले हिन्दू हूं और देशभक्त बाद में । इन बातों का आप क्या अभिप्राय समझते हैं ? हमने निर्णय आप ही पर छोड़ा ? ” उन्होंने चारों ओर बैठे लोगों को सम्बोधन कर उत्तर मांगा ।

शेष लोगों को विचार में मौन देख कर सर्वोदयीजी ने वितृष्णा के स्वर में उत्तर दिया—“इसका क्या मतलब हुआ ? इसका मतलब तो यह है कि बापू इस देश की भौतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा अपनी और इस देश की आध्यात्मिक स्वतंत्रता को अधिक महत्व देते थे ! ”

“हाँ, यह तो ठीक है” भद्रपुरुष ने समर्थन किया ।

“परन्तु आध्यात्मिक स्वतंत्रता का देश की राजनैतिक स्वतंत्रता से क्या सम्बन्ध ? कांग्रेस न तो आध्यात्मिक संस्था थी, न धार्मिक संस्था ! ” जिज्ञासु ने प्रश्न किया, “आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास का प्रश्न व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक होना चाहिये । देश भर के आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास तो न एक जैसे हैं, न तब थे । ”

“और फिर गांधी जी ने यह भी तो कहा है कि मैं हिन्दू पहले हूँ” जिज्ञासु को सुझाने के लिये वैज्ञानिक बोले, “क्या देश की सम्पूर्ण जनता, राजनैतिक और आर्थिक आजादी से अधिक महत्व हिन्दू सम्प्रदाय की मुक्ति की कल्पना को दे सकती थी ? ”

“यह तो आप मानियेगा” मार्क्सवादी बोले, “गांधी जी ने देश के स्वाभाविक गति से चलते राजनैतिक आन्दोलन में, पूँजीवाद की रक्षा करने वाली सत्य-अहिंसा की धारणा की अड़चनें डाल दीं, वर्ना भारत की जनता संघर्ष और अपनी शक्ति से स्वाभाविक मार्ग पर चलकर, विदेशी सरकार के शोषण से बहुत पहले ही मुक्ति पा चुकी होती और उस मुक्ति का रूप भी दूसरा ही होता। उस मुक्ति में देश के भाग्यविधान का अधिकार भारत की पूँजीपति श्रेणी के हाथ में न सिमिट कर जनता के हाथ में होता।

“बताइये, भारत स्वतंत्र किस बात में हो गया है ? आर्थिक और राज-नैतिक रूप से आज भी हमारा भाग्य अंग्रेज और अमेरिकन साम्राज्यवादियों के नियंत्रण में है। हमारा व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध उनकी ही इच्छा से, उनके लाभ के विचार से चलता है। यह बात गलत है कि कांग्रेस ने अंग्रेजों से राज छीन लिया है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेज साम्राज्य दूसरे महायुद्ध के परिणाम में निर्बल हो जाने के कारण, भारत पर मौनिक शक्ति से शासन करने योग्य नहीं रहा। अंग्रेजों ने भारतीय जनता के असंतोष को भी खूब समझ लिया था। अब भारत के शोषण का उपाय उनके हाथ में यही है कि भारत की पूँजीपति शोषक श्रेणी की साझेदारी में काम चलायें। पहले अंग्रेजी शासन के शोषण में भारतीय पूँजीपति श्रेणी भी पिसती थी, उनका भाग बहुत कम रहता था। अब देश की पूँजीपति श्रेणी का भाग बढ़ गया है। इनके स्वार्थ अमेरिकन और अंग्रेज शोषकों के साथ सांझे हो गये हैं। यही है हमारा स्वराज्य जो इस देश की पूँजीपति श्रेणी ने, गांधी जी के नेतृत्व में ब्रिटेन से समझौता करके पाया है। इसी के लिये हम देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन को पूँजीवादी वैधानिकता में बांधकर पंगु बना देने वाले गांधी जी और कांग्रेस के प्रति कृतज्ञ हो सकते हैं।”

शुद्धसाहित्यिक भी आ गये थे। विचार की सूक्ष्मता के लिये माथे पर तयोरियां डाल कर उन्होंने प्रश्न किया—“आपने कहा कि बापू ने अपने पूँजीवादी सत्य-अहिंसा के लिये, देश के हित के प्रति विश्वासघात किया और देश की पूँजीपति श्रेणी और ब्रिटेन के स्वार्थ की रक्षा की। पूँजीवादी सत्य-अहिंसा से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या सत्य और अहिंसा भी पूँजीवादी और मार्क्सवादी अलग-अलग होंगी ?”

“निश्चय होंगी !” हथेली पर दूसरे हाथ का घूसा मारते हुये मार्क्सवादी ने उत्तर दिया, “सत्य-अहिंसा के सम्बन्ध में सभी लोगों की भारणा अपने

हित, ज्ञान और विश्वास के आधार पर होती है। हमारे ज्ञान, विश्वास और आदर्श भी हमारी भौतिक परिस्थितियों के आधार पर होते हैं।”

“बस यही तो भौतिकवादी मार्क्सवादियों की सबसे बड़ी भूल है” सर्वोदयी जी ने सुझाया, “मेरे भाई” अपना हाथ फैलाकर वे बोले, “तुम लोग तो दाल-रोटी और चाय-सिगरेट मिल जाना ही स्वराज्य और देश की उन्नति समझते हो। बापू का उद्देश्य तो इतना संकीर्ण नहीं था। वह तो देश में सत्य अहिंसा की स्थापना से आत्मिक शान्ति चाहते थे।”

“आखिर उस सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति का कुछ परिचय हम लोगों को भी तो हो” वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, “हमें भी मालूम हो कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद कैसी सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति हमें मिली है।”

मार्क्सवादी बात स्पष्ट करने के लिये पहले से ऊंचे स्वर में बोले—“अंग्रेज इस देश से सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति की गठड़ी बांध कर तो लिये नहीं जा रहे थे। वे तो हमें राजनैतिक पराधीनता में बांधकर इस देश की आर्थिक लूट अर्थात् भौतिक साधनों की ही लूट कर रहे थे। देश की जनता इस लूट को रोकना चाहती थी। जनता आत्मनिर्णय का अधिकार किस लिये मांगती थी? अंग्रेज आप को मन्दिर, मसजिद में जाने से नहीं रोकता था, शोषित करने में भी अड़चन नहीं डालता था, उपवास करने और ‘रघुपति राघव राजाराम’ गाने से भी मना नहीं करता था। अंग्रेजी राज में गांधी जी की सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति को चोट किस तरह पहुँच रही थी?”

“क्यों विदेशी दासता से देश का पतन नहीं हो रहा था?” कांग्रेसी भी बीच में बोल उठे।

“देशी दासता से क्या उत्थान हो रहा है?” कामरेड बोल उठे, “हम तो यह पूछते हैं कि देश यदि सशस्त्र क्रान्ति से कुछ जल्दी अंग्रेजों को भगा देता तो सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति को क्या हानि पहुँचती? उससे गांधी जी की मुक्ति के मार्ग में क्या अड़चन आ जाती?”

“आप सशस्त्र क्रान्ति की बात करते हैं? एक निशस्त्र देश सशस्त्र क्रान्ति कर ही कैसे सकता था” सर्वोदयी जी बोले, “यह तो बापू का ही चमत्कार था कि इतने प्रबल साम्राज्य की शक्ति से एक निशस्त्र देश को स्वतंत्र करा लिया। आपके पास शस्त्र थे ही कहाँ?”

“शस्त्र नहीं थे इसलिये अहिंसा उचित थी या जनता की शक्ति का प्रयोग

पाप है ?” वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, “गांधी जी ने यह भी तो कहा था कि तलवार की राह से देश शायद कम कुर्बानियाँ करके ही स्वतन्त्र हो जाता । इसका स्पष्ट अर्थ है कि गांधी जी देश में सशस्त्र क्रान्ति को अराम्भव नहीं समझते थे । यह कहना कि गांधी जी ने देश को निशस्त्र देख कर ही हमें अहिंसा का पाठ पढ़ाया, उनके प्रति ही अन्याय है । वे अहिंसा को नीति नहीं, उद्देश्य मानने का ही उपदेश देते थे । प्रश्न तो यह है कि सशस्त्र क्रान्ति को टालने के लिये देश को अधिक देर तक गुलाम रखने में गांधी जी ने देश की क्या भलाई देखी ?”

“देश की आत्मा की रक्षा” सर्वोदयी जी ने गर्दन उठाकर उत्तर दिया ।

खिन्नता से सिर हिलाकर वैज्ञानिक बोले—“श्रामान, आप तो पहेलियों में बात करते हैं ।”

“देश की आत्मा की रक्षा से आपका मतलब, पूंजीपति श्रेणी की सम्पत्ति और मुनाफा कमाने के अधिकार की रक्षा है” मार्क्सवादी बोले, “गांधी जी सम्पत्ति पर स्वामि के अधिकार की रक्षा के न्याय में विश्वास करते थे । मालिक से सम्पत्ति का अधिकार छीना जाना उनकी दृष्टि में सब से बड़ा अन्याय और हिंसा थी ।”

सर्वोदयी जी टोक कर पूछे बैठे—“आप यह बताइये, बापू अमीरों के सहायक और मित्र थे या दरिद्रों और गरीबों के ?”

“गांधी जी निश्चय ही मालिक श्रेणी के सहायक और रक्षक थे” कामरेड ने ऊँचे स्वर में उत्तर दिया ।

“इतने बड़े झूठ को भला कौन मान सकता है” सर्वोदयी जी और शुद्ध-साहित्यिक प्रायः एक साथ ही बोले, “बापू ने अपना जीवन ही द्रिद्र नारायण की सेवा में अर्पण कर दिया । आप उन्हें मालिकों का समर्थक बता रहे हैं !”

“आपको याद नहीं” इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया, “जब यू० पी० के जमींदारों का डेपूटेशन जमीन्दारी उन्मूलन के सम्बन्ध में गांधी जी के पास गया था, गांधी जी ने उन्हें क्या उत्तर दिया था ? गांधी जी ने उन्हें विश्वास दिलाया था, सम्पत्ति छीनने का मैं कभी समर्थन नहीं कर सकता । आप लोग विश्वास रखिये, मैं अपना सम्पूर्ण प्रभाव और शक्ति श्रेणी संघर्ष को रोकने में लगा दूँगा और यदि कभी अन्यायपूर्ण तरीके से आपकी सम्पत्ति छीनी जायगी, तो मैं आपका साथ दूँगा ।”

कामरेड बोले—“परन्तु किसानों-मजदूरों को गांधी जी ने कभी आश्वासन

नहीं दिया कि मालिक, सम्पत्ति पर अधिकार होने से ही तुम्हारा शोषण करते हैं। जनता और राष्ट्र के हित के लिये उस सम्पत्ति पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार करने के लिये, यदि तुम सत्याग्रह करो तो मैं तुम्हारा साथ दूंगा। गांधी जी ने पूँजीवाद से, किसान-मजदूर श्रेणी के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के संघर्ष में, सदा सर्वहारा श्रेणी के विरुद्ध पूँजीपति श्रेणी का ही साथ दिया। शान्त और शोषक श्रेणी के अधिकार की रक्षा के लिये बल प्रयोग और खून बहाना गांधी जी को कभी हिंसा नहीं जान पड़ी। जब कानपुर और अहमदाबाद में मजदूरों ने अपनी माँगों के लिये हड़ताल की और हड़ताल में साथ न देने वाले मजदूरों को साथ मिलाने के लिये, मिलों के सामने लेट कर सत्याग्रह किया तो गांधी जी ने इस काम को अनुचित बता दिया और मिल मालिकों के पुलिस बुला कर, इन मजदूरों पर लाठी चार्ज कराने का भी समर्थन किया। गांधी जी की अहिंसा का वास्तविक उद्देश्य तो सदा सम्पत्ति कमाने और उस पर स्वामित्व के अधिकार की रक्षा ही रहा है।”

“आप तो कह रहे थे” जिज्ञासू ने याद दिलाया, “कि गांधी जी ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करने के भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में अड़चनें डालीं और ब्रिटिश शासन को देश में देर तक कायम रहने में सहायता दी !”

“बेशक, गांधी जी ने दो तरह से भारतीय स्वतंत्रता को स्थगित किया” कामरेड बोले, “पहली बात, आप याद कीजिये १९२२ में बम्बई और चोरी-चोरा में जन-क्रान्ति जैसा रूप ले रही थी, यदि उसे बढ़ने का अवसर दिया जाता, तो क्या ब्रिटिश सरकार इसी प्रकार सिंहासन आरुढ़ बनी रहती ?”

“यह आप स्वप्न की बातें कर रहे हैं” सर्वोदयी ने धमकाया, “देश तैयार कहाँ था ? यदि हिंसा की वह लहर चल जाती तो जनता बरबाद हो जाती।”

“स्वप्न की बातें आप कर रहे हैं ?” कामरेड ने प्रत्युत्तर दिया, “गांधी जी ने वह आन्दोलन १२ फरवरी १९२२ को रोक दिया था। जानते हैं आप, फरवरी को वायसराय ने लन्दन तार भेजा था कि स्थिति बहुत ही गम्भीर और नाजुक है, हमें धोखे में नहीं रहना चाहिए ! * ऐसी स्थिति में आन्दोलन रोकना अंग्रेजों को पाँव जमाने का अवसर देना था या नहीं ? और स्पष्ट उदाहरण लीजिये, १९३० में क्या हुआ ? १९३० के आन्दोलन में जब पेशावर

*Telegraphic Correspondence regarding the situation in India between Viceroy and Secy, of state Cmd. 1566. 1622,

की जनता ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया, अंग्रेजों ने मुस्लिम जनता पर गोली चलाने के लिये हिन्दू गढ़वाली पल्टन को भेजा। इस गढ़वाली पल्टन ने अपने हिन्दुस्तानी मुसलमान भाइयों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। कई सिपाहियों ने अपनी बन्दूकें जनता को सौंप दी। पेशावर दस दिन के लिये अंग्रेजी शासन से स्वतंत्र हो गया।”

“यदि गांधी जी और कांग्रेस ने गढ़वाली सिपाहियों का समर्थन करके, देश में अंग्रेजी राज कायम रखने वाली हिन्दुस्तानी फौज को देश की आजादी के लिये जनता का साथ देने और विदेशी राज से लड़ने के लिये पुकारा होता तो क्या परिणाम होता ? पेशावर में आरंभ किया गया आजादी का जंग देश भर में फैल जाता और हम तीसरे महायुद्ध में अंग्रेजी दमन का शिकार न बने होते। परन्तु गांधी जी ने देश की जनता का साथ देने के कारण इन सिपाहियों की निन्दा की और अंगरेज सरकार के हुक्म से अपने भाइयों पर गोली चलाना उन सिपाहियों का धर्म बताया। उस समय गांधी जी को अहिंसा का सबसे बड़ा धर्म और हिन्दू-मुस्लिम एकता भी भूल गयी। अहिंसा से बड़ा धर्म उन्हें जान पड़ा, सिपाही का मालिक की आज्ञा मानना। यह शोषण की नैतिकता की रक्षा के लिये सब कुछ कुर्बान कर देना नहीं तो क्या था ? अपनी स्वतन्त्रता के लिये विद्रोह करने वाले अपने भाइयों से सिपाहियों की सहानुभूति, गांधी जी को हिंसा जान पड़ी और स्वतंत्रता चाहने वाली प्रजा पर गोली चलवाना, धर्म और नैतिक जान पड़ा। खैर, हम पूछते हैं कि इसे आप अंग्रेजी शासन कायम रखने में सहायता देना नहीं कहियेगा ?”

इतिहासज्ञ कुछ कहने के लिये करवट ले रहे थे। कामरेड उन्हें सुन लेने का अनुरोध कर कहते गये—“सुनिये, उस समय देश में जो क्रान्तिकारी अंगरेजी सरकार की व्यवस्था और प्रतिष्ठा की जड़ों में बम विस्फोट कर रहे थे, गांधी जी ने कांग्रेस के मंच से उनकी भी सदा निन्दा ही की और देश की जनता को ब्रिटिश शासन-व्यवस्था और विधान के आगे सिर झुकाये रहकर, अधिकारों की मांग करते रहने का उपदेश दिया। सन १९४६ में जब बम्बई में समुद्री सिपाहियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध सशस्त्र बगावत की, तब भी गांधी जी ने इसका विरोध किया और उनकी ओर से पटेल साहब अंग्रेजी साम्राज्यशाही की सहायता के लिये बगावत शांत कराने पहुँचे। गांधी जी और कांग्रेस नेताशाही यह कभी नहीं चाहते थे कि सर्व-साधारण जनता देश के शासन का अधिकार अंग्रेजों से छीन ले। ऐसा होने से देश के शासन

का अधिकार जनता के हाथ में चला जाता । गांधी जी और कांग्रेस की नीति यह थी कि देश की जनता के असंतोष का दबाव अंगरेजों पर डाला जाय और अंगरेज अपनी पूँजीवादी व्यवस्था का बना-बनाया शासन इस देश की पूँजी-पति श्रेणी को सौंप दें; यही हुआ भी । यहाँ तक कि १९४२ में भी जो कुछ विद्रोह अंग्रेजी साम्राज्यशाही के विरुद्ध हुआ, गांधी जी ने उसका भी विरोध ही किया । गांधी जी और कांग्रेस-हार्डिकमाण्ड ने १९३२ के विद्रोह की जिम्मे-वारी अंगरेजों पर डाली और कहा कि तुमने कांग्रेस के नेताओं को जेल में डालकर जनता को बेलगाम कर दिया, तभी यह सब कुछ हुआ, वरना हम विद्रोह न होने देते । लेकिन आज भारत को आजादी दिलाने का सेहरा गांधी जी और कांग्रेस के सिर पर है ।”

“आपने तो पूरी बात पर ही पानी फेर दिया” खिन्न होकर भद्रपुरुष बोले, “आपका मतलब है, कांग्रेस और गांधी जी ने ब्रिटिश शासन को देश से हटाने के लिये कुछ नहीं किया ।”

“यह हम नहीं कहते” मार्क्सवादी बोलने के लिये आतुर इतिहासज्ञ को अवसर न देकर बोले, “हम कहते हैं”

कांग्रेसी ने उन्हें क्रुद्ध स्वर में टोक दिया—“आप अब तक तो प्रमाण देते आये कि गांधी जी और कांग्रेस अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह को दबाते रहे हैं और आप यह भी नहीं कहते कि गांधी जी और कांग्रेस ने भारत से ब्रिटिश शासन हटाने का काम नहीं किया, तो आप कुछ भी नहीं कहते ।” अपने तर्क की प्रबलता प्रकट करने के लिए वे हो-हो कर अट्टहास कर उठे ।

“हम जो कहना चाहते हैं, वह हमें ही कह लेने दीजिये” मार्क्सवादी ने विनय से प्रार्थना की, “हम यह कहना चाहते हैं कि गांधी जी और कांग्रेस के नेताओं ने, जो दोनों ही पूँजीपति श्रेणी के प्रतिनिधि थे और पूँजीवादी न्याय और नैतिकता की धारणा में विश्वास रखते थे, ब्रिटिश पूँजीवादी, साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध भारतीय क्रान्ति का विरोध किया । क्योंकि उन्हें आशंका थी कि ब्रिटिश शासन की पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध भारतीय क्रान्ति इस देश में पूँजीवादी व्यवस्था को भी समाप्त कर दे सकती थी । गांधी जी और कांग्रेस के पूँजीवादी नेतृत्व के सामने १९१७ की समाजवादी रूसी क्रान्ति का उदाहरण था । रूस में क्रान्ति जार के शोषक शासन के विरुद्ध हुई थी । कम्युनिस्टों ने क्रान्ति का नेतृत्व मजदूरों, किसानों और सिपाहियों के सहयोग से किया । परिणाम में शक्ति उनके हाथ में गयी और वहाँ जारशाही

के साथ पूंजीवादी और सामन्तशाही व्यवस्था का भी अन्त होकर जनता का राज हो गया। गांधी जी ने अप्रैल १९४० के 'हरिजन' में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था कि—“मुझसे ऐसे संघर्ष में भाग लेने की आशा नहीं की जा सकती जिससे देश में अराजकता और लाल-विध्वंस फैल जाये।” अर्थात् अंग्रेजी शासन टूटकर अराजकता फैल जाने की अपेक्षा वे अंग्रेजी शासन को ही बेहतर समझते थे। उनकी दृष्टि में अराजकता का अर्थ मालिक और पूंजीपति श्रेणी की मिल्कियत के अधिकार पर चोट थी।

“सुनिये !” इतिहासज्ञ ने टोका

इतिहासज्ञ बहुत देर से बोलने के लिये आतुर थे परन्तु ऊंचा बोल सकने वालों की आवाज की बराबरी नहीं कर पा रहे थे। दोनों हाथ उठाकर बोले—“कामरेड ज़रा हमारी भी सुन लीजिये। आप तो बिलकुल तोप दागते चले जा रहे हैं……”

सर्वोदयीजी खुश हुए। उन्होंने भी इतिहासज्ञ की बात सुन लेने की सिफारिश की।

इतिहासज्ञ ने कहा—“गांधी जी सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को और स्वामी-सेवक के सम्बंध को नैतिक मानते थे, यह तो वे स्वयं स्वीकार करते थे परन्तु यह कह देना ज्यादाती है कि गांधी जी स्वराज्य की संभावना देखकर भी अंग्रेजी राज को कायम करने के पक्ष में थे। आप उनके शब्दों पर ध्यान दीजिये। उन्हें अराजकता और विध्वंस स्वीकार नहीं था। यह केवल आध्यात्मिकता ही नहीं, व्यवहारिक दूरदर्शिता भी थी। आपने १९३० में गढ़वाली पल्टन के विद्रोह की चर्चा की है। आप बताइये; यदि उस समय कुछ पल्टनों सचमुच विद्रोह कर बैठतीं तो उनका राजनैतिक नेतृत्व कौन करता? कांग्रेस में तो न ऐसी हिम्मत थी न यह उनके 'सिद्धान्त' के अनुकूल था। आपकी कम्युनिस्ट पार्टी तो उस समय अभी पैदा हो रही थी। उस समय के सशस्त्र क्रान्ति में विश्वास रखने वाले लोगों—उदाहरणतः भगतसिंह और आज़ाद को क्या भारतीय सेनायें अपना नेता स्वीकार कर लेतीं? उस समय तो राजा-महाराजाओं के ही पास संगठित शस्त्र-शक्तियां थीं। वे लोग तो किसान-मजदूर के राज में विश्वास नहीं रखते थे। प्रजातंत्र प्रणाली में भी विश्वास नहीं रखते थे। वे प्रथम तो अंग्रेजों का साथ देते या अपने राज फैलाने का यत्न करते। उनकी सफलता का अर्थ होता, पूंजीवाद पर प्रतिक्रियाशील, सामन्तवाद का शिकंजा लग जाना। गांधीजी उस तरह की विभीषिका नहीं चाहते

थे तो क्या बुरा करते थे ?”

“बिलकुल ठीक कहा आपने ? यह कामरेड असली राजनीति क्या जानें” कांग्रेसी ने इतिहासज्ञ का बहुत जोर से समर्थन किया ।

सर्वोदयीजी ने भी उनका साथ दिया—“बहुत ठीक, गांधी जी की दूर-दर्शिता का क्या कहना ।”

इतिहासज्ञ ने उन्हें भी सुनने का संकेत करके कहा—“यही बात सन ४६ के सैनिक विद्रोह हो जाने पर होती । उस समय मान लिया कि आपकी कम्युनिस्ट पार्टी की कुछ शक्ति थी, परन्तु इतनी शक्ति तो नहीं थी कि अंग्रेजों की और इस देश के प्रतिक्रियावादी लोगों की शक्ति को सुविधा से पछाड़ लेते । सशस्त्र संघर्ष होने पर राजा-महाराजा और अधिकांश सेनायें आपका साथ देतीं ? जनता पर आपका उस समय कितना प्रभाव था ? आज भी चुनाव हो तो आप क्या आशा रख सकते हैं ? आपके सामने गृहयुद्ध के सिवाय (सिलिवार) कोई चारा नहीं था , आपके विरोध में संसार भर की साम्राज्य-शक्तियां यहां टूट पड़तीं । गृहयुद्ध के चित्र की कल्पना तो कीजिये ? देशके बटवारे के समय जो कुछ पंजाब में हुआ, उसका दस-बीस गुना देश भर में होता । समझिये लीजिये जो हुआ अच्छा ही हुआ ? विदेशी शासन से मुक्ति मिल गयी । आप आज की चिंता कीजिये ।”

“इन्हें असंतोष इस बात का है” सर्वोदयी जी ने कामरेड और मार्क्सवादी को उलाहना दिया, “कि भारत से अंग्रेजी शासन हटाने के समय रक्तपात नहीं हुआ, गृह-युद्ध नहीं हुआ । हिंसा और लूट-पाट करने का अवसर नहीं मिला !”

“नहीं, हमें असंतोष रक्तपात न होने का नहीं है” कामरेड ने उत्तेजित न होकर उत्तर दिया, “लूटपाट का भी अरमान नहीं था । हमें असंतोष इस बात का है कि स्वाराज्य हो जाने पर भी सर्व-साधारण को कोई अधिकार नहीं मिला, अवसर नहीं मिला, उनकी अवस्था नहीं सुधरी । उनके श्रम के फल की लूट अब भी जारी है । खाने-पहरने को पहले से कम मिलता है और राज-नैतिक-आर्थिक मांगों के लिये आन्दोलन की आजादी पहले से बहुत कम है ।”

“तो आप चाहते हैं कि एक ही दिन में सब कुछ हो जाय” कांग्रेसी बोले, “आप सरकार को कुछ करने का अवसर तो दीजिये, सरकार को सहयोग दीजिये !”

“एक दिन में सब नहीं हो सकता, यह सभी जानते हैं परन्तु लोटे से गिरे

पानी का बहाव तो देखा जा सकता है !” वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, “अब एक दिन नहीं, तीस बरस का अनुभव हमारे सामने है। सफलता-असफलता एक बात है परन्तु नीयत तो दिखाई दे गयी है। कांग्रेस सरकार शिकायत करती है कि जनता सहयोग नहीं देती। जनता अपने कल्याण के काम में सहयोग न दे, यह कैसे हो सकता है ? परन्तु सरकार जनता का सहयोग उन्हें शोषण का शिकार बनाने के लिये चाहती है। इस काम में जनता को भला क्या उत्साह हो ? राष्ट्रीय सरकार ने जनता का दामन नहीं जनता की शोषक श्रेणी का दामन पकड़ा है। शासन का अवसर हाथ में आने से पहले कांग्रेस एलान करती थी कि पैदावार के साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा। शासन हाथ में आने पर राष्ट्रीयकरण पहले पांच वर्ष के लिये टला, फिर दस बरस पर बात गयी; अब अनिश्चितकाल के लिये ! सरकार को सहयोग वही देगा जिसका हित सरकार पूरा करेगी। सरकार पैदावार बढ़ाना चाहती है तो उसका तरीका यह नहीं हो सकता कि पैदावार के साधनों को मुनाफाखोर मालिकों के हाथ में रहने दे या जमींदारों से कहे कि अपनी बेकार जमीन भूदान में देकर पुण्य कमा लो। उसका उपाय तो यही हो सकता है कि इन साधनों का उपयोग राष्ट्र की जनता के हित के दृष्टिकोण में किया जाय। राष्ट्र और जनता के हित का उपाय मुनाफाखोर अधिक अच्छी तरह कर सकता है या स्वयं राष्ट्र और जनता ?”

कामरेड झुंझलाकर बोले—“पैदावार बढ़ाने से फायदा क्या अगर जनता उसे खरीद न सके ? पैदावार बढ़ाने का तो नाम सिर्फ मजदूर-विरोधी नीति के बहाने के लिये है। जब दाम बढ़ते जायें और मजदूरी न बढ़े तो जनता पैदावार को खरीदेगी कैसे ? सरकार तीन बरस से पैदावार बढ़ा रही है, साथ ही महँगाई बढ़ रही है और टैक्स बढ़ रहा है !”

“टैक्सों के बारे में एक बात आप देखिये” वैज्ञानिक बोले, “युद्ध के जमाने में अंगरेजों को रुपया इकट्ठा करना था तो उन्होंने मुनाफे पर टैक्स लगाया था, यानि जो रुपया पूँजीपति की जेब में चला जाय उस पर टैक्स था। पूँजीपति यह टैक्स खरीददार जनता पर नहीं डाल सकता था; मजबूर था। राष्ट्र का भला चाहने वाली सरकार आयी है तो मुनाफों पर से, पूँजीपति की जेब पर से बड़े-बड़े टैक्स हट गये और खरीददार जनता पर लग गये। यह जनता का जीवन-स्तर ऊँचा करने का उपाय हो रहा है ?”

“यदि आप कुछ देर के लिये मन से उद्योग-धन्ये चलाने वालों के प्रति

द्वेष और हिंसा दूर कर दें तो बात आपकी समझ में आ सकती है” गम्भीर बात कहने की भूमिका के रूप में कांग्रेसी जी बोले, “और यदि सरकार और पूँजीपतियों के विरुद्ध द्रोह फैलाना ही आपका उद्देश्य है तो बात दूसरी है।”

जिज्ञासु ने उत्सुकता से आगे बढ़कर अनुरोध किया—“जरूर समझाइये साहब, हम जरूर समझना चाहते हैं।”

सब लोगों को समझने के लिये इच्छुक देखकर कांग्रेसी गम्भीरता से बोले, “आप देश का औद्योगीकरण चाहते हैं ? औद्योगीकरण बिना पूँजी के नहीं हो सकता इसलिये राष्ट्र निर्माण के लिये पहला कदम देश में पूँजी इकट्ठा करना होना चाहिये। इसीलिये सरकार पहिले पूँजीपतियों को पूँजी इकट्ठी करके देश में उद्योग-व्यवसाय बढ़ाने का अवसर दे रही है। देश में उद्योग-व्यवसाय बढ़ने पर ही जनता के जीवन का स्तर ऊँचा हो सकता है। समझे आप ?”

मार्क्सवादी उत्तेजित हो गये—“आप हमें समझाना चाहते हैं कि कांग्रेसी सरकार राष्ट्र के औद्योगीकरण के लिए देश के पूँजीपतियों को झांसा दे रही है। वास्तव में झांसा दिया जा रहा है जनता को। आप कहते हैं, राष्ट्र में उद्योग-धन्धे चलने के लिये पूँजी चाहिये ? पूँजी होती क्या है ? एक गाँव में आप सड़क बनाना चाहते हैं पर पूँजी नहीं है। फर्ज कीजिये, गाँव वाले अपने साझे हित का खयाल कर, सब लोग रोज दो घंटे मुफ्त काम कर देते हैं, सड़क बन जायगी। पूँजी हो गई न ? पूँजी तो परिश्रम की शक्ति ही है। पूँजीपति के पास पूँजी कहाँ से आती है ? मुनाफे के रूप में मजदूर के श्रम का हथियारा हुआ भाग ही तो उसकी पूँजी है ? वास्तव में तो पूँजीपति की पूँजी भी राष्ट्र या जनता की ही सम्पत्ति है। आप राष्ट्र और जनता की भलाई के लिये राष्ट्र की पूँजी, पूँजीपति से लौटाने के बजाय और पूँजी यानि मुनाफे के रूप में जनता के श्रम का भाग उसके हाथ में दे देना चाहते हैं। राष्ट्र पर पूँजीपति के कब्जे को और बढ़ा देना चाहते हैं। इस देश के पूँजीपति का अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद से गहरा नाता जोड़कर, इस देश को अमेरिका और इंग्लैण्ड की पूँजीवादी व्यवस्था के साथ जकड़ देना चाहते हैं। जब मजदूर कहता है—‘संसार के मजदूरों एक हो’ तो आप कहते हैं यह लोग अपने देश को विदेश का दास बना रहे हैं। जब नेहरू साहब देश को अंग्रेजों के कामनवेल्थ में फँसा देते हैं, आप समझते हैं, राष्ट्र की विजय हो गयी। जब पूँजीपति देश को अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी व्यवस्था में फँसाता है तो आपको देश का कल्याण जान पड़ता है ?”

“हम यह जानना चाहते हैं” वैज्ञानिक बोले उठे, “कि देश में उद्योग-धन्धों का विस्तार कुछेक पूंजीपतियों के यत्न में, उनके मुनाफे के दृष्टिकोण में जल्दी हो सकता है या सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रयत्न से और राष्ट्र की आवश्यकता और हित का खयाल करने से ? पूंजीपति तो वही धन्धा करेगा जिसमें उसे तुरन्त मुनाफे की आशा होगी । पूंजीपति अमेरिका में कपड़ा बनाने की मशीन खरीदेगा । ऐसी मशीन को बनाने वाली मशीन नहीं खरीदेगा”

“नहीं नहीं” कामरेड बोले, “आप यह क्यों नहीं सोचते कि अमेरिका और इंग्लैण्ड, जो स्वयं मुनाफे की खोज में हैं, आपको औद्योगीकरण में सहायता क्यों देने लगे ? वे तो जितनी देर तक हो सकेगा, आपको पिछड़ा हुआ ही रखना चाहेंगे । शोषको से आशा करना कि वे आपको अपने बन्धन से छूटने योग्य बनायेंगे, अपने आपको धोखा देना है । क्या आप समझते हैं कि उनका हृदय परिवर्तन हो जायगा ? अलवत्ता अमेरिका के सहयोग से इस देश का पूंजीपति अपनी पूंजी और देश की व्यवस्था पर अपना कब्जा बढ़ा लेगा, सर्व-साधारण जनता का भला न हो सकेगा । पूंजीपति के फायदे को ही राष्ट्र का फायदा बताना हो तो बात दूसरी है ।”

“भाई साहब, हम दूसरों के उदाहरण में क्यों न अपनी समस्या सुलझायें ?” इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया, “यह तो ससार का अनुभव है कि व्यक्तिगत स्वामित्व में चलने वाले धन्धों से पैदावार कभी उतनी अधिक नहीं हो सकती जितनी कि राष्ट्रीय स्वामित्व और प्रबन्ध में चलने वाले धन्धों से हो सकती है । इंग्लैण्ड तो पूंजीवादी देश है । वहाँ के पूंजीपति अपना बस चलते कभी अपना अधिकार छोड़ कर, अपने धन्धों को राष्ट्र के हाथ में देने के लिये तैयार नहीं होंगे । परन्तु पिछले महायुद्ध के समय जब अपनी जान बचाने के लिये पैदावार को बढ़ाना जरूरी था, उन्होंने युद्ध का सामान तैयार करने के सब कारखाने और दूसरे भी कई धन्धे जिनका सम्बन्ध युद्ध से था, राष्ट्रीय अधिकार में कर लिये थे । क्या हमारे लिए जरूरी है कि जिस तरीके को दूसरे लोग गलत समझ चुके हैं, उसे जरूर दोहरायें और सीधा तरीका सामने होने पर भी उसे न अपनायें ? हमारा देश अन्न की कमी से मर रहा है । आपके सामने अमेरिका का ही उदाहरण है कि बड़े परिमाण में खेती करने से खर्च कम और पैदावार अधिक होती है । परन्तु आप भूमि पर छोटे-छोटे किसानों के स्वामित्व का महत्व अधिक समझते हैं इसलिये भूमि का राष्ट्रीयकरण करके उस पर बड़े परिमाण में साझी खेती नहीं कराना चाहते । आप रूस का ही

उदाहरण देखिये । क्रान्ति से पहले जब रूस पूँजीवादी व्यवस्था के ढंग पर चल रहा था । वहाँ जनता का ८० प्रतिशत भाग हमारे देश की तरह खेती ही किया करता था और अन्न कष्ट भी वहाँ सदा ही बना रहता था । समाजवादी ढंग पर पैदावार के राष्ट्रीयकरण के बाद से आप ही जानते हैं कि वहाँ अन्न की पैदावार कितनी बढ़ गई है कि वह दूसरे देशों को अन्न दे रहा है । अन्न के अतिरिक्त दूसरी चीजों की भी हालत देख लीजिये । कहां तो रूस योरूप में सब से पिछड़ा हुआ गिना जाता था और आज अमेरिका और ब्रिटेन की मिली हुई शक्ति भी उसके भय से कांप रही है । रूस में पैदावार की शक्ति कहां से आ गयी ? यह रूस की भूमि और आकाश का जादू नहीं, समाजवादी व्यवस्था और मेहनत करने वालों के संगठन की शक्ति है । युद्ध के बाद से अमेरिका-इंग्लैण्ड एक ओर बेकारी से परेशान हैं दूसरी ओर महंगाई से । रूस में बेकारी बिल्कुल नहीं, बेकारी की सम्भावना ही नहीं । कीमतें वहाँ लगातार घट रही हैं । कारण स्पष्ट है कि वहाँ पैदावार मुनाफे के लिये नहीं, जनता के उपयोग के लिये होती है ।”

इतिहासज्ञ के लम्बे व्याख्यान के उत्तर में कांग्रेसी जी फिर बोले—“परन्तु देश के औद्योगीकरण के लिये पूँजी और उद्योग-धन्धों के साधन तो चाहिये । हमारे सामने अमेरिका, इंग्लैण्ड और जापान के औद्योगिक विकास के भी तो उदाहरण हैं । हम समाजवाद को कब बुरा कहते हैं । पहले देश का औद्योगीकरण तो हो जाय उसके बाद राष्ट्रीयकरण भी हो जायगा । क्यों साहब ?” उन्होंने शुद्धसाहित्यिक, सर्वोदयी जी तथा दूसरे लोगों के समर्थन की आशा में पूछा और उन लोगों ने, “बिल्कुल ठीक है” कह कर उनका समर्थन कर भी दिया ।

इतिहासज्ञ तिलमिला उठे—“यह इतिहास को उलटने की चेष्टा है महाराज ! आप इंग्लैण्ड, अमेरिका और जापान के ढंग पर अपना औद्योगिक विकास करना चाहते हैं ?” कांग्रेसी जी को हामी भरते देख वे बोले, “ठीक है, उन लोगों ने पहले भाप के इंजन का आविष्कार किया, पहले वे अपनी बुनाई की मशीनें खच्चरों से चलवाया करते थे और लकड़ी के जहाज बनाते थे । पहले उनकी डाक देश भर में घोड़ों पर चला करती थी । आप भी वही सब कीजियेगा ? आपको उनकी नकल नहीं करना, उनके उदाहरण से सीखना है । आप उनसे पूर्ण विकसित यंत्र बनाना सीखेंगे और आविष्कार करेंगे तो उस से अच्छे यंत्रों का । ऐसे ही आर्थिक व्यवस्था में भी जो ठोकरें बे खा चुके

हैं, उनकी नकल हम नहीं करेंगे। आपके देश में जिस समय औद्योगीकरण हो रहा है, उस समय यंत्रों अर्थात् पैदावार के साधनों का उपयोग अनेक देशों में सामाजिक और सामूहिक ढंग से होना आरम्भ हो चुका है। इसलिये यह आवश्यक नहीं कि आप ब्रिटेन और अमेरिका की नकल इन साधनों को पहले पूंजीपति की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनायें और बाद में उन का राष्ट्रीयकरण करें। क्या जरूरत है कि हम देश को भयंकर आर्थिक संकटों में से, लाखों की बेकारी की हालत से, जनता के भूखे रहने और पैदावार को जलाने की हालत से गुजारें ?

“आप चाहते हैं सरकार सब मिलें और पैदावार के साधन उठा कर मजदूरों को सौंप दे ?” कांग्रेसी जी ने प्रश्न किया।

“यह तो चाहते हैं श्रेणो संघर्ष हो, हिंसा हो, और रक्तपात हो” सर्वोदयी जी क्षुब्ध स्वर में बोले, “और फिर मजदूरों की तानाशाही हो। क्या यह दमन नहीं होगा ? मजदूरों का दमन और शोषण अन्याय है तो मजदूरों की तानाशाही, पूंजीपतियों का शोषण और दमन भी अन्याय है।”

वैज्ञानिक जोर से हंस दिये और बोले—“सर्वोदयी जी इस समय अनुभव के जगत की बात नहीं, आध्यात्मिक कल्पना की बात कर रहे हैं ! आपको पूंजीपति का शोषण होने का भय है ? मजदूरों का शोषण तो इसलिये होता है या हो सकता है कि वे अपने श्रम से पैदावार करते हैं। उनके श्रम का पूरा फल उन्हें न मिलना उनका शोषण है। मजदूर पूंजीपति के बंधन से छूट न जायें, या अपने श्रम का अधिक भाग देने के लिये मजबूर रहें इसलिये उनका दमन किया जाता है। सर्वोदयी जी, आप बताइये कि पूंजीपति का शोषण और दमन मजदूर तानाशाही में क्यों कर हो सकेगा जरा समझाइये तो ?”

“वाह क्यों” शुद्धसाहित्यिक ने उत्तर दिया, “जब आप पूंजीपति की सम्पत्ति, उसकी मिल, कारखाना छीन लेंगे तो यह उसका शोषण नहीं है ?”

“पूंजीपति की मिल राष्ट्र के अधिकार में ले लेने का यह मतलब नहीं है श्रोमान कि वह मिल मजदूरों की हो मिल्कियत हो जायगी और पूंजीपति की मिल्कियत नहीं रहेगी” वैज्ञानिक ने अपनी बात समझाई, ‘क्या मिल मालिक राष्ट्र का अंग नहीं है ? वह अकेला ही मालिक न रहेगा, उसे सहयोग देने वाले सब लोग मालिक हो जायेंगे। यदि मालिक भी उस मिल में काम करेगा तो वह भी साझीदार होगा। यदि पूंजीपति दूसरों पर अपना दमन

चाहता है तो आप ही बताइये, आपकी अहिंसा में उसके लिये कौन नाम और स्थान है ? मार्क्सवाद या कम्युनिज्म पूंजीपति श्रेणी का शोषण नहीं करना चाहता । वह शोषण के अवसर और कारणों (श्रेणी विभाजन) को मिटा देना चाहता है । शोषक श्रेणी को समाप्त कर देने का मतलब पूंजीपतियों के गने काट देना नहीं, उनके हाथ में शोषण का अवसर ले लेना है । केवल उनका हृदय-परिवर्तन ही नहीं, कर्म भी परिवर्तन कर देना है । कम्युनिज्म तो मेहनत करने वालों का शोषण समाप्त करना चाहता है । मनुष्य-मात्र को जीविका के लिये श्रम करने का और अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर देना चाहता है ।”

“तो फिर आप मजदूरों के निरंकुश-राज या मजदूरों की डिक्टेटरशिप की माँग क्यों करते हैं ?” जिज्ञासु ने प्रश्न किया, “आखिर समाज मजदूरों की तानाशाही क्यों सहे ? किसी भी श्रेणी की तानाशाही अन्याय है ।”

“भाई यही तो हम भी कह रहे हैं” सर्वोदयीजी ने समर्थन किया, श्रेणी संघर्ष तो हिंसा की वृत्ति का परिणाम है । उसमें समाज में हिंसा ही फैलेगी । हमारा आदर्श तो रामराज्य की सत्य-अहिंसा है जिसमें सब को समान अधिकार हो ।”

“हमारा आदर्श रामराज की नहीं मेहनत करने वालों की सत्य-अहिंसा है” कामरेड ने मुक्का उठाकर एलान किया, “जिसमें सबको समान अवसर हो । जिसमें श्रम का आदर हो, शासन और शोषण का नहीं !”

इतिहासज्ञ के माथे पर प्रश्न चिन्ह बन गया—“रामराज्य की सत्य-अहिंसा ? आप राजसत्ता के युग की व्यवस्था का रामराज्य चाहते हैं ?.... जिसका वर्णन वाल्मीकि ने रामायण में और महाभारत में व्यास ने किया है ? जिसमें राजा या भूमिपति ही सब कृच्छ्र था । प्रजा को, चाहे वह जिस स्थिति की हो, शासन के सम्बन्ध में बोलने का अधिकार न था । राजा का पुत्र ही राजा होता था । भूमिपति श्रेणी ही समाज की स्वामी थी । श्रम करने वाले और कारोबार करने वाले सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे ?”

“क्या कह रहे हैं आप !” सर्वोदयीजी ने ललकारा ।

“ठीक ही कह रहा हूँ” इतिहासज्ञ कहते गये, “उस समय कोई राज-मभा होती थी तो राज सम्बन्धियों, उसके वंश के लोगों और मुंह लगों की मण्डली ही होती थी । भूमिपतियों की श्रेणी के उस शासनकाल में वैश्य को भी शासन व्यवस्था में कोई अधिकार नहीं था । कपड़ा बुनने वाला, लोहे,

लकड़ी, चमड़े का काम करने वाले, किसी भी प्रकार की मेहनत करने वाले, कर्मकार, मजूरे सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे। समाज में उनका स्थान नीचा था। परिश्रम के सब काम जन्मगत और वंशगत होने से मेहनत करने वालों के लिये अनादर की वही परम्परा आज भी चली आ रही है। रामराज की सत्य-अहिंसा में श्रम का आदर नहीं था, स्वामित्व के अधिकार से श्रम का फल छीन लेने के अधिकार का ही आदर था। ब्राह्मण और क्षत्रिय का आदर इसलिये था कि ब्राह्मण व्यवस्था के बनाने के अधिकार से और क्षत्रिय शस्त्र के बल से, भूमि के मालिक बनकर श्रम किये बिना भोग करते थे। भूमिपति श्रेणी के एक-छत्र राज में व्यापार का भी आदर न था। 'वनिये-बक्काल' का नाम तिरस्कार से ही याद किया जाता था। सौदा बेचकर पेट पालने वाले का और धन पर सूद लेने वाले का भी निरादर ही था। किसी को धी बेचने वाला और किसी को अन्न बेचने वाला कह कर गाली दी जाती थी.....”

राष्ट्रीयजी ने टोक दिया--“यह तो भाई साहब इसलिये था कि देश सम्पन्न था, घर-घर में सब कुछ था। बेचने खरीदने की जरूरत ही क्या थी ?”

इतिहासज्ञ कुछ झुंझला उठे--“आप बार-बार बेतुकी बात कह देते हैं। देश सम्पन्न था तो क्या श्रम के बिना पैदावार हो जाती थी ? समृद्धि में क्या श्रम का निरादर होना चाहिये ? कभी कोई समाज पदार्थों के विनिमय के बिना चल सकता है ? यदि घर-घर में जूता बनता और लोहा पीटा जाता था तो इन कामों को करने वाली जाति का निरादर क्यों था ? क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि प्रत्येक घर में सभी काम हो जाते होंगे ? आप यही कल्पना कर सकते हैं कि जिस घराने में तीन-चार सौ गुलाम रहते होंगे, वही परिवार अपनी जरूरत की सब चीजें स्वयं बनवा लेता होगा। या कल्पना कर सकते हैं कि एक गाँव के ठाकुर या राजवंश या गुरुवंश के लिये सब काम प्रजा से जबरदस्ती, बेगार में करा लिये जाते होंगे। ऐसे युग और व्यवस्था में व्यापार का भी आदर नहीं हो सकता था क्योंकि व्यापार की न तो अधिक आवश्यकता थी और न व्यापार के लिये पदार्थों की पर्याप्त पैदावार। केवल स्थानीय तौर पर पदार्थों का विनिमय हो जाता होगा। ऐसी व्यवस्था को केवल भूमिपति श्रेणी का निरंकुश शासन कहा जा सकता था। समाज में आदर शासक श्रेणी का ही होता है और उसी की नैतिकता और व्यवस्था की मानता होती है। रामराज ऐसी ही व्यवस्था थी।

“अब पैदावार का साधन मुख्यतः भूमि नहीं उद्योग-धन्धे हो गये हैं तो उद्योगपतियों का आदर है। आज आप चाहें जितने बड़े ब्राह्मण या ठाकुर हों, चाहे राजा या गवर्नर हों, आप कपड़े बुनने की मिल के मालिक को, चमड़े का काम करने वाली मिल के मालिक को या लोहे का सामान बनाने वाली मिल के मालिक को, जुलाहा, चमार और लोहार कह कर अपने सामने जमीन पर बैठाने का साहस नहीं कर सकते। सूद खाने वाले बैंक के मालिक को सूदखोर कह कर दुत्कार नहीं सकते क्योंकि यह पूंजीपति व्यवसायी श्रेणी का राज है। आज के व्यवसायी का यह सामर्थ्य है कि वह बड़े से बड़े राजा को खरीद सकता है। आज इंग्लैण्ड और जर्मनी में लड़ाई होगी या नहीं, अमेरिका रूस पर हमला करेगा या नहीं और हिन्दुस्तान पाकिस्तान में लड़ाई होगी या समझौता होगा, यह बात राजा लोग और भूमिपति नहीं निश्चय करते बल्कि पूंजीपतियों का अन्तर्राष्ट्रीय गुट अपने प्रतिनिधियों द्वारा यह सब निश्चय करता है। यह पूंजीपति श्रेणी का निरकुश राज है जिसे गांधी जी और कांग्रेस इस ज़माने में रामराज का नाम देना चाहते हैं।

“शासन सदा निरकुश ही होता है चाहे जिस श्रेणी का हो। प्रजा की स्वतंत्रता का अर्थ केवल शासन व्यवस्था के अनुसार चलने का अवसर होता है। कोई भी शासन व्यवस्था अपने आपको पलट देने की स्वतंत्रता प्रजा को नहीं दे सकती। समाज में श्रेणियाँ पहले भी थी, आज भी हैं। आप समान अधिकार, मालिक मजदूर के हित के समझौते और श्रेणी-मैत्री की बात कहकर इस संघर्ष पर और मजदूर श्रेणी के शोषण पर पर्दा डालना चाहते हैं क्योंकि आप पूँजीवादो श्रेणी के पिटू हैं। श्रेणी-संघर्ष तो तभी मिट सकता है जब समाज में श्रेणियाँ न रहें।”

“यदि श्रेणियाँ समाज में सदा रही हैं, यदि यह मनुष्य-समाज का गुण और स्वभाव है तो श्रेणियाँ सदा ही रहेंगी भी” शुद्धसाहित्यिक जी समाधान के स्वर में बोले—“जब समाज का श्रेणियों में बटे रहना आवश्यक है तो समाज से हिंसा को मिटाने के लिये यही उचित है कि मानवता के धर्म को मानकर सबके कल्याण की भावना से सब श्रेणियाँ अपने-अपने धर्म का पालन करें।”

“धर्म की बात तो साहित्यिकजी झगड़े की है” कामरेड ने टोक दिया, “धर्म का निश्चय कौन करेगा ? पटेल साहब करेंगे ? हमारा मतलब है कि पूँजीपति श्रेणी करेगी या मजदूर श्रेणी करेगी ? मजदूर कहता है, मेरा पेट

नहीं भरता, मेरे श्रम की कमाई में मे मुझे कुछ और हिस्सा दो। पूंजीपति कहता है, नहीं और हिस्सा तुमको दूँगे तो हमारा मुनाफा ही क्या बचेगा ? मजदूर कहता है, हम हड़ताल करेंगे ! पटेल साहब कहते हैं, यह कानून में मना है। और कानून बनाना पटेल साहब, यानि पूंजीपति श्रेणी के हाथ में है।

“आप को याद है कि पहले मजदूर मिलों में कितने घंटे काम करता था ? मालूम न हो तो हम बता दें; मजदूर दस-बारह घंटे काम करते थे, अब करता है आठ घंटे। याद है कि मजदूर श्रेणी को इसके लिये कितना संघर्ष करना पड़ा था; कितनी हड़तालें हुई थीं ? शोपक श्रेणी ने शोपित श्रेणी को कभी कोई अधिकार आसानी से नहीं दिया। मजदूर जेलों में गये और गोली चली, तब भी पूंजीपति कहता था कि मजदूर के काम के घंटे कम करने से राष्ट्र की हानि होगी। पूंजीपति अपने आपको तो राष्ट्र समझता है और मजदूर को राष्ट्र की गैर या बकरा। मजदूरी का एक-एक पैसा मजदूर ने लड़कर ही बढ़वाया है। उसकी शक्ति एक ही बात में है कि संगठित होकर पैदावार को बंद कर देता है। तभी पूंजीपति उसकी बात मानने के लिये मजबूर होता है। चूँकि सरकार पूंजीपतियों की है, वह अपने कानून से मजदूर को संगठित नहीं होने देती और जब जरूरत समझती है अपनी पुलिस और फौज लेकर मजदूर को पीट-पाट कर अपना कायम किया धर्म मनवा लेती है।

“ऐसे समय, राष्ट्र के लिये भय की पुकार उठा कर, मार्क्सवादी अशान्ति का नाम देकर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को दबा दिया जाता है। क्या यह पूंजीवाद की निरंकुशता नहीं है ? मजदूर को जिन्दा रहना है तो उसे पूंजीपति श्रेणी के कानून और दमन की शक्ति से लड़ना ही पड़ेगा। पैदावार के साधन और पैदावार के बंटवारे की व्यवस्था समाज के हित के लिये आने हाथ में लिये बिना, मजदूर श्रेणी के सामने और कोई मार्ग नहीं है। मतलब यह है कि पैदावार के साधनों को समाज की साक्षी सम्पत्ति बना कर, पैदावार का बंटवारा मुनाफे के लिये नहीं, समाज की आवश्यकता के अनुसार करके ही मजदूर श्रेणी समाज से संघर्ष को समाप्त कर सकती है। पैदावार के साधन कुछ लोगों के हाथ में होने से ही समाज में श्रेणियाँ बन जाती हैं। पैदावार के साधन पूरे समाज की साक्षी सम्पत्ति हो जाने से, श्रेणियाँ बनने का कारण ही न रहेगा। पूंजीपति श्रेणी तो हृदय परिवर्तन द्वारा अपने आपको समाप्त कर नहीं देगी। सामन्त श्रेणी ने भी आत्मत्याग की भावना से अपने-अपने अधिकार पूंजीपति श्रेणी को नहीं सौंप दिये थे। आपके ये छुटपुटे राजे

भी अपने आखिरी दम-तक प्रजातन्त्र प्रणाली का विरोध करते रहे हैं, परन्तु पूँजीपति श्रेणी ने उन्हें निकाल भगाया। वह शोषण की एक अवस्था का अंत था। शोषण की दूसरी अवस्था का भी अंत होना चाहिये। अब आवश्यक है कि मजदूर श्रेणी, पूँजीपति श्रेणी के कारण होने वाले अन्याय और अव्यवस्था को समाप्त करे। इसके लिये शासन-शक्ति मजदूर श्रेणी के हाथ में ही आना आवश्यक है। शासन-शक्ति पूर्ण रूप से मजदूर श्रेणी के हाथ में हुये बिना पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त नहीं किया जा सकता और न समाजवादी व्यवस्था ही कायम हो सकती है ?” कामरेड ने अंतिम बात ऊँचे स्वर में कही।

साहित्यिकजी ने हँस कर पूछा—“और मजदूर श्रेणी को मार कर कौन भगायेगा ?”

“जब समाज में श्रेणी भेद नहीं होगा तो यह प्रश्न कैसे उठेगा ?” कामरेड ने उत्तर में प्रश्न किया।

“मजदूर श्रेणी को भगायेगी मध्यम श्रेणी” राष्ट्रीयजी ने सीना फुला कर उत्तर दिया, “जर्मनी में कम्युनिस्टों को मध्यम श्रेणी ने भगाया था कि नहीं ?” उन्होंने कामरेड को सम्बोधन किया, “कम्युनिज्म मजदूरों के संकीर्ण स्वार्थ का अन्तरराष्ट्रीय रूप है और राष्ट्रीय भावना से शून्य है। मध्यम श्रेणी ही वास्तव में राष्ट्रीयता की रक्षा करती है, वही राष्ट्रीयता की जड़ है। इस देश में भी वही होगा। राष्ट्र का भविष्य मध्यम श्रेणी के ही हाथ में है।”

“हाँ ठीक है” सर्वोदयीजी ने और शुद्धसाहित्यिक ने भी समर्थन किया, “संस्कृति की संरक्षक तो मध्यम श्रेणी ही होती है।”

“जर्मनी के इतिहास को आप ठीक पेश नहीं कर रहे हैं” इतिहासज्ञ बोले, “जर्मनी में मजदूर आन्दोलन को मध्यम श्रेणी ने नहीं, जर्मनी की पूँजीपति श्रेणी ने भी अकेले नहीं कुचला। जर्मनी में मजदूर क्रान्ति को दरवाजे पर आ गया देखकर, संसार भर की पूँजीपति श्रेणी ने मिल कर उसे कुचल डाला था। जर्मनी की मध्यम श्रेणी को साधन जरूर बनाया गया था। जर्मनी में मजदूर श्रेणी को कुचल देना इसलिये सम्भव हो सका कि मजदूर श्रेणी अभी शासन की शक्ति नहीं पा सकी थी, समाज को श्रेणी रहित नहीं बना सकी थी। मध्यम श्रेणी ने रूस में क्यों नहीं मजदूर श्रेणी को कुचल डाला, पूँजीपतियों के हाथ का हथियार बन कर कोशिश तो वहाँ भी मध्यम श्रेणी ने की ही थी ? रूस में संसार भर की पूँजीपति श्रेणी मिल कर, रूस की ज़ारशाही और पूँजीपति श्रेणी की सहायता कर रही थी परन्तु मजदूर

श्रेणी के हाथ में पूर्ण निरंकुश शक्ति आ जाने के कारण उन्हें डिगाया नहीं जा सका ।

“परन्तु जर्मनी में नाज़ीवाद ने मजदूर श्रेणी की स्वाभाविक प्रगति को कुचल कर जो अन्तर-विरोध बढ़ा दिये उनका परिणाम क्या हुआ ? शायद आप भी अपने देश को पूंजीपति श्रेणी के हाथ की छड़ी बन फर संसार भर पर भारत का साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखते हैं ! क्या कहना ! दूसरे देशों में आदमी थोड़े ही बसते हैं ! वे चुपचाप आपके गुलाम बन जायेंगे ? अंग्रेज आप पर राज करे तो जुल्म । आप अंग्रेज, अमेरिका, रूस, जापान पर राज करने का स्वप्न देखें तो आपका राष्ट्रीय अधिकार है ! उस से भी बुरा हाल होगा जो जर्मनी का हुआ । राष्ट्रहित भी शासक श्रेणी के हाथ एक अच्छा बहाना है । पूंजीपति राष्ट्रहित के नाम पर देश भर को लूटते हैं । मध्यम श्रेणी राष्ट्रहित के नाम पर अपने प्रभुत्व का स्वप्न देखती है । अरे भाई, राष्ट्र तो देश का ९९ प्रतिशत किसान मजदूर वर्ग है । राष्ट्र क्या चाहता है, यह स्वयं राष्ट्र को ही फैसला कर लेने दो !”

“अजो इस श्रेणी की स्थिति है क्या ?” मार्क्सवादी ने पूछा, “मध्यम श्रेणी पैदावार के साधनों की मालिक नहीं और न यह श्रेणी पैदावार के साधनों पर शासन करती है । पैदावार के उद्देश्य को भी यह श्रेणी निश्चय नहीं कर सकती इसलिये व्यवस्था पर नियंत्रण करने का उन्हें कोई अवसर हो नहीं सकता । मालिक श्रेणी की दास बन कर ही यह श्रेणी अपनी जीविका पाती है । मध्यम श्रेणी मालिक श्रेणी से तनखा पाकर, मालिक श्रेणी के स्वार्थ को पूरा करने के लिये मजदूरों पर शासन करने में उन्हें सहायता देती है । इस लिये मालिक और शासक श्रेणी, मध्यम श्रेणी के लोगों को मजदूरों की अपेक्षा कुछ अधिक सुविधायें दे देती है । जैसे कोई ठेकेदार अपने मजदूरों का प्रबन्ध करने वाले मेंट मजदूर को कुछ अधिक मजदूरी और एक वर्दी दे देता है । परन्तु इस श्रेणी की आर्थिक अवस्था और संख्या भी नित्य गिर रही है । इस श्रेणी के लोग स्वतंत्र रूप से जो छोटे-मोटे कारोबार करते आ रहे थे, उनके कारोबार उद्योगपतियों की छाया में मुरझाते जा रहे हैं और इन्हें पूंजी-पतियों का दलाल बन जाने के लिये मजदूर होना पड़ता है । इस श्रेणी के जो लोग अच्छे पेशे चलाते आये हैं, उनकी सन्तानें भी उस दर्जे पर नहीं टिकी रह सकतीं । समाज में देखिये, कुछ बरस पहले स्कूल मास्टर और क्लर्क लोग अच्छे खासे मध्यम श्रेणी के आदमी गिने जाते थे; आज उनकी हालत

कारीगर मजदूरों से गिरी हुई है ।

“मध्यम श्रेणी का भविष्य और हित इस बात पर निर्भर करता है कि यह श्रेणी समाज को शोषण और आर्थिक संकट में रखने वाली व्यवस्था का साथ देती है या समाज को शोषण से मुक्त करके आर्थिक प्रगति की ओर ले जाने के प्रयत्न में साथ देती है ।

“मध्यम श्रेणी को यह निश्चय करना है कि वह मरणोन्मुख पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा का बोझ उठा कर, स्वयं पूंजीपति श्रेणी की दास बनी रह कर, शोष समाज के साथ अपने आपको भी संकट में रखेगी या समाज के आर्थिक संकट को समाप्त करके सम्पूर्ण समाज के साथ विकास के मार्ग पर आगे बढ़ेगी ।”

भद्रपुरुष ने प्रश्न किया—“क्या आप मध्यम श्रेणी से यह आशा करते हैं कि वे अपने आदर, सम्मान और जीवन निर्वाह के ऊंचे दर्जे को छोड़ कर अपनी इच्छा से मजदूरों की हीन अवस्था में जा मिले ?”

“यानि अपने बौद्धिक जीवन को तिलांजली दे दें ?” साहित्यिक जी ने भी प्रश्न का समर्थन किया ।

“अब आपने असली बात कही” वैज्ञानिक बोले, “आप स्पष्ट अपना स्वार्थ स्वीकार करें तो बात समझ में आती है । यह सोचा जा सकता है कि इस श्रेणी का हित कैसे प्राप्त हो सकेगा । राष्ट्रीयता का ढोल मध्यम श्रेणी क्यों पीटती है ? मध्यम श्रेणी की यह आशंका कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में इस श्रेणी के जीवन का स्तर गिर जायगा, निर्मूल है । बहुत बड़े-बड़े पूंजीपति या जागीरदार लोग, जो अकेले बहुत बड़े-बड़े महलों में और कई-कई महलों में रहते हैं, कई-कई मोटरें, निजी रेलगाड़ियाँ, हवाईजहाज और पानी के जहाज रखते हैं, यदि अपने लिये अब से कम सुविधा की आशंका करें तो ठीक है परन्तु ऐसे लोगों की संख्या दस लाख में एक भी कठिनाई से है । अमेरिका के सम्पूर्ण धन का रुपये में बारह आने वहाँ के केवल ८५ हजार व्यक्तियों के कब्जे में है और सबसे ऊंची श्रेणी में तो केवल १० हजार ही व्यक्ति हैं । इंग्लैण्ड के धन का रुपये में ग्यारह आना वहाँ की केवल दो प्रतिशत जन संख्या के हाथ में है । युद्ध के बाद से हमारे देश में पूंजीपतियों को अवसर मिलने के कारण यहाँ भी आर्थिक विषमता का वही हाल हो रहा है । आज ९९ प्रतिशत की आय १०० रुपया प्रति मास भी नहीं ।

“निश्चय ही पूंजीवादी व्यवस्था में मध्यम श्रेणी और मेहनत करने वाली

श्रेणी की अवस्था शोचनीय है और लाख में दो एक व्यक्ति बहुत ऐश में रहते हैं। यह सोचना गलत है कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज उसी अवस्था में रहेगा जिसमें आज मजदूर रहते हैं।”

“अजी साहब” कामरेड ने टोक दिया, “रूस के मजदूर अंडे-मक्खन खाते हैं, सूट पहनते हैं और छुट्टियों में पहाड़ों और समुद्रतट की सैर करते हैं। अपने क्लबों में थियेटर और नाच करते हैं। उनका अच्छे से अच्छा इलाज होता है। आपकी मध्यम श्रेणी के अच्छे ओहदे के अफसर भी उनका सा जीवन नहीं पा सकते।”

“पूँजीपति श्रेणी अपने मुनाफे के लिये बाजार में दाम ऊँचे रखने के लिये पैदावार कम करती जाती है। सैकड़ों वैज्ञानिक तरीके ऐसे हैं जिनका उपयोग केवल इसलिये नहीं किया जाता कि पुराने ढंग की मशीनों में लगा पूँजीपतियों का सरमाया व्यर्थ न हो जाये। आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक वस्तु की पैदावार जितनी चाहे बढ़ाई जा सकती है। मोटी और प्रत्यक्ष बात है कि आर्थिक संकट को दूर करने के लिये पूँजीवादी देशों में कीमतें बढ़ाई जा रही हैं परन्तु समाजवादी चीन और रूस में कीमतें लगातार घटाई जा रही हैं। जिस प्रकार के काम मध्यम श्रेणी के लोग करते हैं, उनकी आमदनी और जीवन का स्तर रूस में आज पुरानी पूँजीवादी अवस्था की अपेक्षा कई गुणा अधिक ऊँचा है। डाक्टर, वैज्ञानिक, कलाकार और आविष्कारक रूस में जैसी सुविधा पाते हैं वैसी किसी भी पूँजीवादी देश में नहीं पा सकते।”

“परन्तु पशु की तरह पेट भर लेना ही तो मनुष्यता नहीं है” वितृष्णा से साहित्यिक जी ने विरोध किया, “समाजवादी रूस में जन-साधारण को खाना मिल जाता होगा परन्तु उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का तो अन्त हो गया। वहाँ न बोलने की स्वतन्त्रता है न संगठन की।”

“यह तो पूँजीपति श्रेणी का झूठा प्रचार है” मार्क्सवादी बोले, “और इसका प्रयोजन है कि पूँजीवादी देशों की जनता समाजवाद की ओर आकर्षित होकर पूँजीवाद को समाप्त न कर दे। बताइये, पूँजीवादी देशों की जनता को क्या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है? स्वतन्त्र व्यक्ति पहला काम करेगा अपना पेट भरना। जिसे पेट भरने की स्वतन्त्रता नहीं, उसे भी आप स्वतन्त्र कहेंगे? रूस में फिर से पूँजीवाद कायम करने की चेष्टा के लिये स्वतन्त्रता अवश्य नहीं है। क्या आपके देश में पूँजीवाद को समाप्त कर सकने की स्वतन्त्रता है? दूसरों की स्वतन्त्रता छीन कर जो अधिकार कुछ व्यक्तियों को दिये जायेंगे, वे

संपूर्ण समाज को स्वतन्त्र नहीं बना सकते । पूंजीवादी देशों में पूंजीपति श्रेणी के अतिरिक्त कौन स्वतंत्र है ? पूंजीपतियों को दूसरों के श्रम का फल भोगने की स्वतंत्रता है, अपना स्वार्थ पूरा करने लायक सरकार बना लेने की स्वतंत्रता है, उन्हें इस बात की भी स्वतन्त्रता है कि अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये, मजदूर श्रेणी के स्वतन्त्रता-आन्दोलनों को कुचलने वाले कानून बना सकें । यह पूंजीपति श्रेणी का रामराज्य पूंजी का निरंकुश शासन नहीं तो और क्या है ? इसमें मैहनत करने वाली श्रेणी को क्या स्वतंत्रता है ? न उचित रोजगार की, न उचित शिक्षा और आवश्यकता पड़ने पर इलाज की और न अपने हित की रक्षा करने वाले कानून बना सकने की ।”

“अच्छा मान लीजिये, समाजवाद में आर्थिक सकटों का उपाय हो जायगा” कांग्रेसी जी ने विचार प्रकट किया, “तो आप वैधानिक ढंग से उसका उपाय कीजिये । अब तो देश में जनता का राज है, प्रजातंत्र है । आपको व्यक्तिगत और राजनैतिक आन्दोलन की स्वतन्त्रता है । सरकार जनता के प्रतिनिधियों के फैसले में चल रही है । आप चुनाव में अपना बहुमत पैदा कीजिये । वैधानिक तथा कानूनी ढंग से कानूनी परिवर्तन द्वारा आप जो चाहे कर सकते हैं । आप श्रेणीसंघर्ष, मजदूरराज और हिंसा से क्रान्ति का प्रचार क्यों करते हैं ? अरे भाई, चुनाव में आपको भी उतना ही अवसर है जितना पूंजीपतियों को और दूसरे राजनैतिक दलों को ! क्यों साहब ?” उन्होंने सर्वोदयी जी और शुद्धमाहित्यिक को समर्थन के लिये सकेत किया ।

“साहब किम बात की स्वतंत्रता है और किमे है ?” कामरेड ने चौक कर पूछा, “शायद कांग्रेसी राज की प्रशंसा करने की, मफेद टोपी पहनने की और मुनाफा कमाने की स्वतंत्रता है । राज-भक्तों को तो अंगरेजी राज और नाजीराज में भी स्वतंत्रता थी । सरकार के पिट्ठुओं को तो सभी व्यवस्थाओं और नानाशाहियों में भी स्वतंत्रता होती है । आप बताइये, प्रत्येक प्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने ‘शान्ति और सुरक्षा’ कानून जारी किया हुआ है या नहीं ? कांग्रेसी राज में दफा १४४ तो कभी खत्म ही नहीं होती । दमन के कानून उन्हीं लोगों के खिलाफ तो लागू होते हैं जो पूंजीपति व्यवस्था को बदलने का यत्न करना चाहते हैं । ऐसे लोगों को न सरकार परस्तों की तरह बोलने की स्वतन्त्रता है, न मभा करने की, न जनता के सामने अपनी बात रखने की और न जनता को संगठित करने की । वैधानिक उपाय से व्यवस्था परिवर्तन कैसे हो सकता है ? विधान का तो अर्थ ही है शासन-व्यवस्था की रक्षा ?”

इतिहासज्ञ ने बहुत उचक कर कहा “विधान का निश्चय विधान की रक्षा करना ही है। परन्तु प्रजातंत्र व्यवस्था में विधान को बनाने और परिवर्तन करने का अधिकार प्रजा के ही हाथ में होता है। प्रजा विधान को बदलना चाहे तो उसका यह अधिकार छीन लेना भी हिंसा है।”

“देखिये, अशान्ति और हिंसा का प्रचार तो कोई भी सरकार नहीं सह सकती” सर्वोदयी जी बोले, “अशान्ति और हिंसा का तो दमन करना ही होगा।”

“विरोध का सामना आप दमन और हिंसा में ही करेंगे तो अहिंसा का उपदेश किन समय के लिये है ?” मार्क्सवादी ने पूछा, “यदि लोगों का मन चाहा ही होता रहे तो सभी अहिंसा का पालन मजे में कर सकते हैं।”

“वान फिर वहीं आ गई; अशान्ति और हिंसा क्या है” वैज्ञानिक बोले, “इस समय तो यह निर्णय पूंजीपति व्यवस्था के स्वार्थ से ही होगा ?”

“नहीं यह तो मोटी अक्ल की बात है” कांग्रेसी जी बोले, “जिम बात ने मार्क्सनिक जीवन की व्यवस्था बिगड़े, जैसे आप हड़ताल कराते हैं; यह अव्यवस्था पैदा करना है। इसका तो कानूनी तौर पर दमन करना ही होगा।”

“मजदूरों का हड़ताल करना किस नैतिक सिद्धान्त में हिंसा कहा जा सकता है माहव ? हड़ताल तो मजदूरों पर की जाने वाली पूंजीवादी हिंसा का अहिंसात्मक विरोध है।” वैज्ञानिक ने प्रश्न किया, “मजदूर को अपने श्रम का पेट भरने लायक मूल्य मांगने का अधिकार है या नहीं ? वह यह मूल्य मांगता है। किसी मजदूर के अकेले मांग करने का कुछ मूल्य नहीं है इसलिए मजदूरों को संगठित मांग करनी है। मजदूर की मांग की उपेक्षा की जाती है तो उसके पास अपनी मांग पूरी कराने का क्या साधन है ? मजदूर सरकार के पास दुहाई देता है। पूंजीपतियों की प्रतिनिधि सरकार उसकी मांग को ठुकरा देती है। उदाहरण आपके सामने है, अध्यापकों ने वेतन बढ़ाने की मांग की, नहर कर्मचारियों ने की, रेल मजदूरों ने की, डाक विभाग के लोगों ने की, कपड़ा मिल वालों ने की। इन सब की मांगें सरकार को अनुचित ही मान्य हुईं। अब मजदूर कोई मांग करता है आप दफा १४४ लगा देते हैं कि वह जनता के सामने अपनी बात न कह सके। वह अपनी मांग पूरी कराने के लिये हड़ताल करता है, तो आप उसे पकड़ कर जेल में डाल देते हैं। उसे सभा करके अपना संगठन नहीं करने देते, उसके अखबार भी बन्द कर देते हैं। उस पर मुकदमा चलाकर उसका अपराध साबित नहीं करते। ऐसे लोगों पर

आप सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाकर उनके काम को जनता के सामने रखने का साहस नहीं कर सकते क्योंकि आपको भय है कि जनता की सहानुभूति जो अधिकांश में शोषित हैं, व्यवस्था में परिवर्तन चाहने वालों की ओर हो जायगी—परन्तु इसमें नैतिकता क्या है और क्या अहिंसा है ? मजदूरों से हड़ताल द्वारा अपनी मांग पूरी करने का अधिकार छीनना उतना ही अनैतिक और अन्याय है जितना एक ज़माने में शर्तबन्द-मजदूरी (इंडेचर्ड लेबर) का कानून था । यह केवल व्यवस्था की शक्ति से, शस्त्र-शक्ति से एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी का दमन है । आपके कानून दलित और शोषित श्रेणी को अपनी मुक्ति का कोई अवसर नहीं देते । मजदूर श्रेणी का सत्य, अहिंसा और न्याय का आदर्श दूसरा है । जब दो आदर्शों में भिड़न्त होगी तो शक्ति से ही न्याय का निर्णय होगा । आज पूंजीपति व्यवस्था अपनी शक्ति का उपयोग कर रही है । इस व्यवस्था को अन्याय समझने वाली मजदूर श्रेणी, अपनी शक्ति के उपयोग का अवसर पाने के लिये संघर्ष कर रही है और अपना न्याय स्थापित करना चाहती है ।”

इतिहासज्ञ बोलने के लिये आगे सरके परन्तु मार्क्सवादी की ऊंची आवाज में बोल उठे—“व्यवस्था और विधान चाहे सामन्त श्रेणी का हो या पूंजीपति श्रेणी का । विधान और सरकार की शस्त्र-शक्ति का प्रयोजन अपनी व्यवस्था की रक्षा ही होता है । कायम सरकार और उसकी श्रेणी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये जनता को प्रचार द्वारा गुमराह करने की कोशिश करती है और विरोधी श्रेणी को प्रचार का अवसर और अधिकार नहीं देती । जनमत को अपने विरुद्ध जानकर चुनाव आदि को भी संकटमय स्थिति के बहाने से टाल देती है ।

“सरकार अपने दमन को ‘व्यवस्था की रक्षा के लिये शक्ति का उचित और आवश्यक उपयोग’ कहती है ।

“शोषक श्रेणी के राज में शोषित श्रेणी के लिये समान अधिकार की बात ही गलत है । अधिकार का प्रयोग तो अवसर और साधनों से ही हो सकता है । जिस श्रेणी के पास साधन नहीं, उसे अपने अधिकारों के प्रयोग का अवसर भी नहीं । पूंजीवादी प्रजातंत्र का सब से बड़ा धोखा है सबके लिये समान अधिकार और न्याय का एलान करना । पूंजीवादी प्रजातन्त्र एक हाथ से सबको कानूनी समानता का और न्याय का अधिकार देता है, व्यवसाय और जीविका कमाने की स्वतंत्रता देता है, दूसरे हाथ से शोषित श्रेणी को

साधनहीन बनाकर उनसे अधिकारों के प्रयोग का अवसर छीन लेता है। पूंजीवादी प्रजातंत्र में चुनाव के या शासन का अवसर पाने के जितने साधन हैं वे सब पूंजीपतियों के काबू में रहते हैं।

“पूंजीवादी व्यवस्था के हाथ में सबसे जबरदस्त शस्त्र मजदूर श्रेणी के संगठन और आन्दोलन को गैरकानूनी करार दे देना है। न्याय की समानता भी धोखा है क्योंकि पूंजीपति श्रेणी की व्यवस्था में न्याय का मूल्य देना पड़ता है। न्याय का मूल्य देने का अवसर साधनहीन श्रेणी के पास कहाँ है? शोषित श्रेणी अपने हाथ-पाँव पूंजीवादी व्यवस्था के नियमों से बांधे रखकर कभी स्वतंत्रता नहीं पा सकती और न शासन का अधिकार अपने हाथ में ले सकती है। शोषित श्रेणी के लिये मुक्ति, आत्मनिर्णय और समाज के शासन का अधिकार पाने का एक ही उपाय है—अपनी संगठित जन शक्ति से पूंजीवादी व्यवस्था का चलना असम्भव करके उसके स्थान पर अपनी नयी आर्थिक और शासन की व्यवस्था कायम करना। यह न्याय के दो आदर्शों का संघर्ष है। समाज उसी श्रेणी के न्याय को स्वीकार करता है जो अधिक बलवान होती है।”

कामरेड इतिहासज्ञ को दबाकर बोले—“श्रेणी रूप से मेहनत करने वाली श्रेणी ही समाज में सब से बलवान है इसलिये समाज का नेतृत्व इसी श्रेणी के हाथ में आना न्याय है और आवश्यक भी है।”

“आप तो हिंसा को ही न्याय, अन्याय को ही न्याय बता रहे हैं !” सर्वोदयीजी ने विरोध किया। इसके अतिरिक्त कुछ कह नहीं सके।

इतिहासज्ञ ने स्वर ऊँचा करके कामरेड को चेतावनी दी—“आप बिलकुल असंगत बातें कर रहे हैं.....”

सर्वोदयीजी और कांग्रेसी जी भी बोल पड़े—“हाँ हाँ, बिलकुल बेमतलब ! सुनिये ! सुनिये !”

इतिहासज्ञ को मैदान मिला तो खांस कर बोले—“आपकी बातें बिलकुल असंगत है। आप कहते हैं समाज में सबल श्रेणी का ही न्याय चलता है। यह भी कहते हैं कि समाज में मजदूर श्रेणी सबसे बलवान है। यदि ऐसा है तो मजदूर श्रेणी अपना न्याय क्यों लागू नहीं कर सकती।.....”

कामरेड ने टोक दिया—“हमारे समाज में मजदूर श्रेणी अभी अपनी शक्ति से सचेत नहीं है।”

“अजी बात तो कह लेने दीजिये” इतिहासज्ञ ने खिन्नता प्रकट की, “जिसे अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं, उसका बल क्या हुआ ? जिसे अपनी शक्ति

का ज्ञान नहीं, उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान कैसे हो सकता है ?.....”

“बहुत ठीक ! बहुत खूब !” सर्वोदयीजी, कांग्रेसी जी और शुद्ध साहित्यिकने समर्थन के लिये हुंकार भरी ।

“परन्तु हमारा कर्तव्य.....” कामरेड फिर टोकने लगे ।

इतिहासज्ञ ने दोनो हाथ उठा कर दुहाई दी—“हमारी भी सुन लीजिये ! आपका कर्तव्य यही है न कि मजदूर श्रेणी को उसकी शक्ति का ज्ञान कराये ।

रन्तु याद रखिये कर्तव्य ज्ञान के बिना शक्ति बहुत ही विनाशकारी हो सकती है.....”

“बिल्कुल ठीक, बहुत खूब !” सर्वोदयी और कांग्रेसी ने दाद दी ।

“साधु ! साधु !” शुद्ध साहित्यिक ने भी समर्थन किया ।

इतिहासज्ञ अखाड़े में जम गये तो धैर्य से बोले—“सुनिये, पूंजीपति भी तो मनुष्य है परन्तु पूंजीपति श्रेणी का शासन आज समाज के लिये हितकर नहीं रहा क्योंकि वह समाज की व्यवस्था को अपने व्यक्तिगत हित या अपने मुनाफे के विचार से चलाना चाहता है । यह उसका संकीर्ण स्वार्थ है परन्तु मजदूर भी तो व्यक्ति है । वह भी व्यक्तिगत रूपसे संकीर्ण स्वार्थ में फंस सकता है । मजदूर ऐसा करता भी है । याद मजदूरी काम के परिमाण के अनुसार न हो और मजदूरों पर नियंत्रण न हो तो वह कभी उस लगन से काम नहीं करता जैसे किसान अपने खेत में या अपना काम करने वाला कारीगर घर में करता है । हम अधिकांश मजदूरों की बात कह रहे हैं । कभी सरकारी मजदूरों को काम करते देखा है आपने ! सुनिये यदि मजदूर के हाथ में शक्ति हो और कर्तव्य बुद्धि न हो तो समाज के लिये मजदूर का संकीर्ण स्वार्थ पूंजीपति के संकीर्ण स्वार्थ से अधिक हानिकारक होगा । सीधी बात है, पूंजीपति तो अपने संकीर्ण स्वार्थ के लिये भी मजदूरों को जिन्दा रखना चाहेगा परन्तु यदि मजदूरों में अपने मजदूरी के कारोबार को जिन्दा रखने या उसे उन्नत करने की चेतना हो, वह केवल मजदूरी ले सकने की ही बात सोचे तो क्या होगा ? बताइये, अभी तक मजदूर यूनियनों का क्या व्यवहार है ?”

सर्वोदयीजी और कांग्रेसीजी ने फिर ऊँचे स्वर से उनका समर्थन किया ।

कामरेड दवे नहीं बोले—“अभी तक मजदूर यूनियनों को ऐसा उत्तर-दायित्व और अवसर ही कहाँ मिला है ? अभी तो मजदूर शोषण के विरुद्ध लड़ रहे हैं ।”

“सुनिये” इतिहासज्ञ बोले, “शोषण के विरुद्ध लड़ना उचित और

आवश्यक है परन्तु शोषण के विरुद्ध लड़ते समय भी उत्पादन की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती। ऐसे संघर्ष में भी कर्तव्य बुद्धि ही सहायक होगी। कर्तव्य बुद्धि शक्ति को बढ़ाती है। आप श्रेणी संघर्ष द्वारा समाज के शासन की शक्ति पूँजीपति श्रेणी से छीन लेने की बात करते हैं। उसके लिये आधुनिक युग में किसी रक्त-क्रान्ति की जरूरत नहीं है। राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट करने की भी जरूरत नहीं है। ऐसी घटनायें तब होती थीं जब मजदूर श्रेणी को अपनी बात सुना सकने का अवसर नहीं था। जब मजदूर श्रेणी के हाथ में कोई भी वैधानिक अवसर नहीं था तब भी वह शनैः-शनैः बल पकड़ती गयी। अब कम से कम प्रजातंत्रवादी देशों में तो ऐसी अवस्था है कि किसान-मजदूर श्रेणी पूर्ण रूप से सचेत हो जायें तो शक्ति उनके शोषकों के हाथ में एक दिन भी नहीं रह सकती परन्तु मजदूर श्रेणी में उस शक्ति को पाने और संभालने की कर्तव्यबुद्धि भी तो जगानी चाहिये !”

“हाँ हाँ !” सर्वोदयी जी और कांग्रेसी ने समर्थन किया।

“आपको कर्तव्य बुद्धि का क्या प्रमाण चाहिये ?” कामरेड और मार्क्स-वादी ने ललकारा।

“इतिहासज्ञ ने धैर्य रखने का संकेत किया” कर्तव्य बुद्धि का प्रमाण राष्ट्रीय उद्योगों के, उदाहरणतः रेलवे, पोस्ट आफिस या राष्ट्रीय कारखानों की मजदूर यूनियनों को देना चाहिये। यदि इन उद्योगों में यूनियनों के सहयोग से व्यवस्था को सुधारने और पैदावार को बढ़ाने में सहयोग मिले तो इन उद्योगों के मजदूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारने में बहुत बड़ी सहायता मिल सकेगी। आप जानते हैं रेलवे से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये के माल की चोरी होती है, उससे अधिक नुकसान प्रतिवर्ष रेलवे को रेलवे कर्मचारियों की धांधली के कारण होता है। सरकार से नियंत्रित कारखानों में श्रम शक्ति-का कितना अपव्यय होता है ? यूनियनों ने कभी इसके विरुद्ध आवाज उठायी है ? यूनियनों, इन उद्योगों को उन्हें पालने वाली गैया मानकर, उन्हें पुष्ट करने का यत्न करें तो क्या परिणाम होगा ?

इतिहासज्ञ कहते गये—“मजदूर और कर्मचारी यूनियनों अभी तक अपने संगठनों का उद्देश्य आत्मरक्षा के लिये विरोध ही समझती रही हैं परन्तु क्या वे सदा शोषित ही रहेंगे ? यदि शासक बन सकने का उत्तरदायित्व संभालना है तो उनके संगठनों को, रचनात्मक उद्देश्यों को भी समझना चाहिये। समाज

के शासन की अधिकारी तो वही श्रेणी होगी जिसकी रचना और रक्षा कर सकने की शक्ति अधिक होगी ?

बचकर क्लब में उस दिन विचित्र बात हुई । क्लब का अंत समझोते से हो सका ।



